हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की अन्तरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

Hindi Chetna:International Quarterly Magazine of Hindi Pracharini Sabha Canada

वर्ष : 26, अंक : 103, जुलाई-सितम्बर 2024 Year: 26, Issue:103, July-October 2024

लघुकथा- चिन्तन एवं सृजन विशेषांक

महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

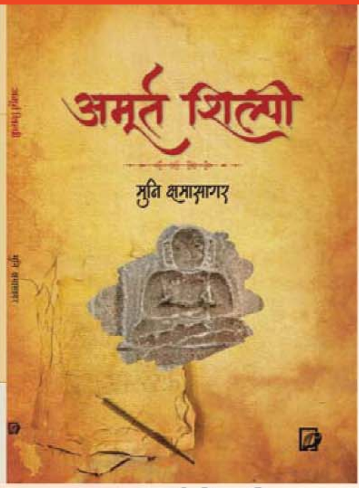

अमूर्त-शिल्पी

पृष्ठ : 126, मूल्य : 18 रुपये, भाषा : हिंदी

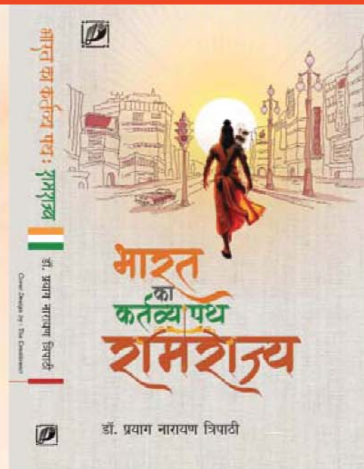

भारत का कर्तव्य पथ : रामराज्य

पृष्ठ : 290, मूल्य : 440 रुपये, भाषा : हिंदी

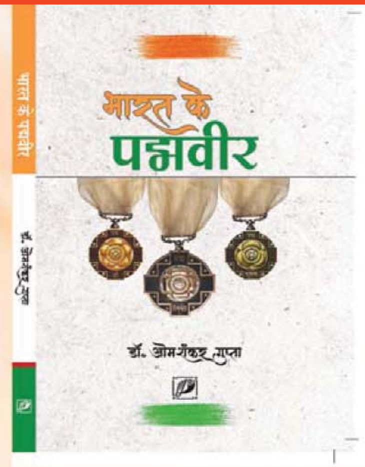

भारत के पद्मवीर

पृष्ठ : 162, मूल्य : 340 रुपये, भाषा : हिंदी

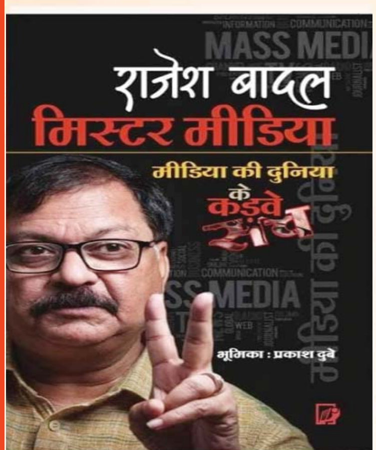

मिस्टर मीडिया

पृष्ठ : 350, मूल्य : 650/- रुपये

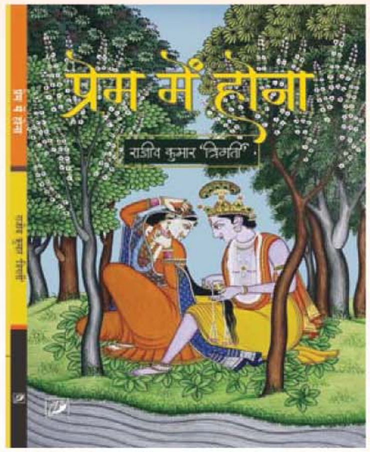

प्रेम में होना (कविता संग्रह),

पृष्ठ : 110, मूल्य : 205 रुपये, भाषा : हिंदी

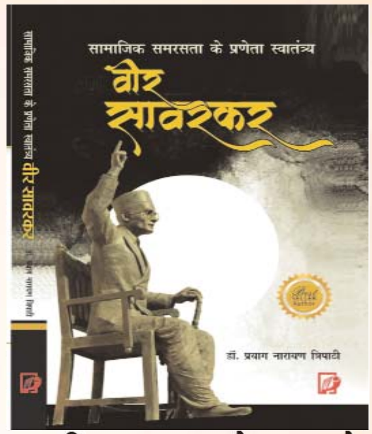

सामाजिक समरसता के एक प्रणेता स्वातंत्र्य वीर सावरकर

पृष्ठ : 242, मूल्य : 400 रुपये, भाषा : हिंदी

सामाजिक और संवैधानिक मूल्य अंतर्संबंध और अन्तर्द्वन्द्व

पृष्ठ : 114(रॉयल साइज़), मूल्य : 315 रुपये

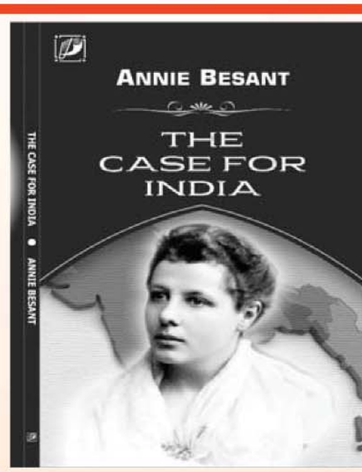

Annie Besant-Intro

Pages : 64, Price : 150, Language : English

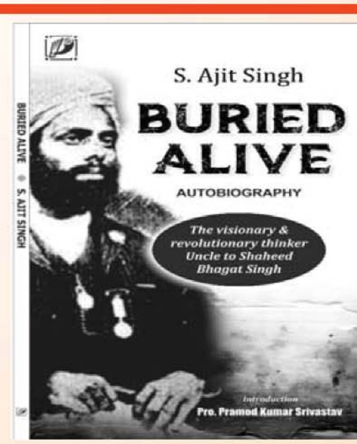

S. Ajit Singh's Autobiography (Buried Alive)

Page : 110 , Rs. 270.00, Language : English

प्रकाशक : P.P. PUBLISHING PVT. LTD. INDIA. 3/186 RAJENDRA NAGAR, SECTOR-2, SAHIBABAD, GHAZIABAD 201005. CONTACT - +91-7827310876

Mail – pravasiprempublishing@gmail.com

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी

संपादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

सह सम्पादक
कृष्णा वर्मा

परामर्श-मण्डल
डॉ. कुँवर दिनेश
डॉ. पद्मजा शर्मा
डॉ. कविता भट्ट
राज महेश्वरी
श्रीनाथ द्विवेदी
विजय माथुर

प्रतिनिधि-मण्डल
शशि पाधा (यू.एस.)
प्रो. स्मृति शुक्ला (भारत)
सुनीता पाहुजा (मॉरीशस)
अनुपमा सिंह (मस्कट)
अमित कुमार सिंह (नीदरलैण्ड)

आवरण
जैस्मिन जोविअल

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001
वर्ष : 26, अंक : 103, जुलाई-सितम्बर 2024

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham Ontario, L3R 3R1
Phone :(905) 475-7165, Fax :(905) 475-8667
e-mail : shiamtripathi@gmail.com

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

इस अंक में

वर्ष : 26, अंक : 103,

जुलाई-सितम्बर 2024

● संपादकीय-3

प्रमुख संपादक - श्याम त्रिपाठी

● दृष्टि-4

विजय जोशी

● लघुकथा-चिन्तन

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'-5

डॉ.शिवजी श्रीवास्तव-13

डॉ. कुँवर दिनेश सिंह-19

● सन्दर्भित लघुकथाएँ

धरोहर

प्रेमचन्द-29

विष्णु प्रभाकर-29

हरिशंकर परसाई-30

● सहयात्री

सुकेश साहनी-30

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'-33

श्याम सुन्दर अग्रवाल-34

कमलेश भारतीय-35

डॉ. सुषमा गुप्ता-35

अंजू खरबन्दा -36

अनीता सैनी 'दीप्ति'-37

अर्चना राय-37

अश्विनी कुमार आलोक-38

डॉ. उपमा शर्मा-38

डॉ. कविता भट्ट-39

खेमकरण सोमन-39

घनश्याम अग्रवाल-39

चैतन्य त्रिवेदी-40

डॉ. छवि निगम-40

जानकी वाही-40

दिव्या शर्मा-41

पूनम कतरियार-42

प्रियंका गुप्ता-42

भगवान वैद्य प्रखर-42

मंजु मिश्रा-43

महेश शर्मा-44

रचना श्रीवास्तव-44

विरेंदर 'वीर' मेहता-45

शिवचरण सरोहा-45

डॉ. शैलजा सक्सेना-45

सत्या शर्मा-46

सन्तोष सुपेकर-46

सरोज परमार-47

सविता पाण्डे-47

सुदर्शन रत्नाकर-48

सुभाष नीरव-48

हरभगवान चावला-49

● लघुकथा : सृजन-प्रक्रिया

सुकेश साहनी-50

श्याम सुन्दर अग्रवाल-51

हरभगवान चावला-51

डॉ. सुषमा गुप्ता-53

● आरोही

अंजू निगम-54

अनिता ललित-54

कृष्णा वर्मा-54

डॉ. जेन्नी शबनम-55

ट्विंकल तोमर सिंह-55

रंजना जायसवाल-56

डॉ. नितिन उपाध्ये-56

निर्देश निधि-57

माधव नागदा-57

मीनू खरे-57

योगराज प्रभाकर-58

रामकरन-58

शशि पाधा-59

डॉ. श्याम सुन्दर 'दीप्ति'-60

सतीश राठी-60

● पुस्तक-दीर्घा

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'-61

रोहित कौशिक-63

● चलते-चलते-64

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

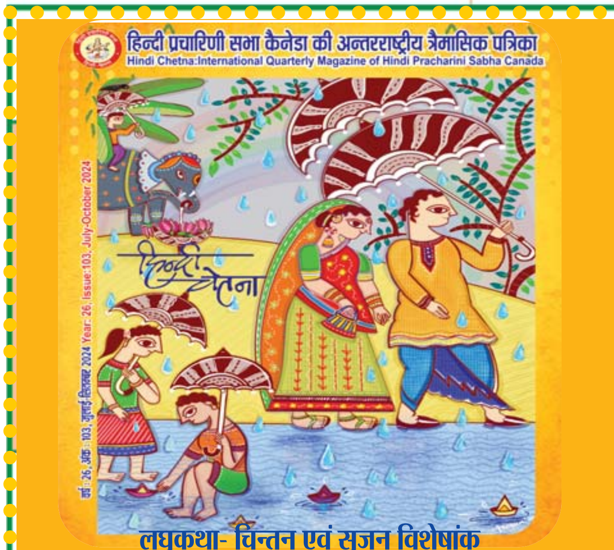

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है। अपने चित्र और पूर्ण पते के साथ केवल अपनी मौलिक रचनाएँ वर्ड की फ़ाइल में भेजें। 'हिन्दी चेतना' एक साहित्यिक पत्रिका है, अत: रचनाएँ भेजने से पूर्व इसके अंकों का अवलोकन ज़रूर कर लें। केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना दी जाएगी।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- 'हिन्दी चेतना' जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होती है।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी।
- रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक-मंडल का होगा।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।
- रचनाएँ यूनिकोड(मंगल) फोण्ट में **shiamtripathi@gmail.com** पर ही भेजें।

'हिन्दी चेतना' को आप ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :

https://www.hindichetna.com

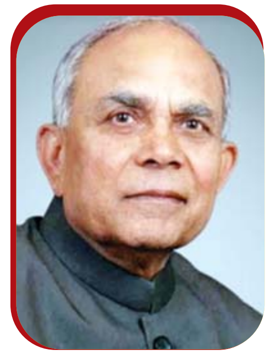

ग्लोबल वार्मिंग शब्द से मानव परिचित तो है; परंतु इसके परिणाम से यों अनजान बना बैठा है, जैसे उसका इससे कुछ लेना- देना ही नहीं। जलवायु वैज्ञानिकों के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के लिए मानव गतिविधियाँ उत्तरदायी हैं।

ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण प्रदूषण है। वाहनों, कल- कारखानों का धुँआ, विस्फोटकों की गैसें और धुँआ वायुमंडल को व्यापक पैमाने पर प्रदूषित कर रहे हैं। सालों तक नष्ट न होने वाला हानिकारक रसायनयुक्त प्लास्टिक वातावरण को प्रदूषित कर जीव-जन्तुओं को संकट में डाल रहा है। प्लास्टिक चबा लेने पर जानवर मर रहे हैं। प्लास्टिक जलाने पर उसका धुँआ श्वास नली में जाकर कैंसर का कारण बनता है। प्लास्टिक में पैक खाना किडनी, ब्रेन, नर्वस सिस्टम को डैमेज करता है। ए.सी. रेफ्रिजरेटर के उपयोग की अधिकता से सीएफसी ओजोन की परत में छेद कर पराबैंगनी किरणों को खुला रास्ता दे रही है।

ऑक्सीजन का एकमात्र स्रोत पौधे हैं, जो पर्यावरण संतुलन बनाए रखते हैं। निजी स्वार्थ में अन्धा मानव उनकी हत्या कर पर्यावरण असंतुलन पैदा कर रहा है। टिश्यू पेपर के लिए रोज अंधाधुंध हरे-भरे पेड़ काट रहा है। औद्योगिक केन्द्रों की जहरीली गैसों से हवा, पानी, मिट्टी को प्रदूषित कर अपने और दूसरों के जीवन से खेल रहा है।

बढ़ती जनसंख्या भी प्रदूषण का एक बड़ा कारण है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण जलवायु परिवर्तन हो रहा है, जिसके फलस्वरूप तूफान, बाढ़, सूखा जैसी त्रासदी की संभावनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। वनों में आग लग रही है। धरती का औसत तापमान बढ़ता जा रहा है और हीटवेव की स्थिति उत्पन्न हो रही है, जिससे लोगों की जान जा रही है। भारत में इसका जानलेवा प्रभाव सबको हलकान किए है।

ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं, जो समुद्र का जल स्तर बढ़ाकर समुद्री तूफान की संभावना बढ़ा रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ते खतरे को कम करने व अपने जीवन की सुरक्षा के लिए पर्यावरण संरक्षण में सहभागिता अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा परिणाम विनाशकारी होंगे।

प्लास्टिक के प्रयोग से बचें। कपड़े की थैली प्रयोग करें। भंडारण के लिए अन्य धातु के बर्तन लें। टिश्यू पेपर के बजाय कपड़े का तौलिया प्रयोग करें। हाइब्रिड कार, सार्वजनिक परिवहन, कारपूल का विकल्प चुनकर कार्बन डाइऑक्साइड को रोकें। ए सी, रेफ्रिजरेटर का सीमित उपयोग करें। ग्लोबल वार्मिंग और बढ़ते प्रदूषण से तपती, जलती, बीमार पड़ी धरती का उपचार करें। वनों का कटान रोकें एवं अपने आस- पास पौधे रोपें। केवल एक दिन खानापूर्ति न करके हर दिन पर्यावरण को बचाने का अपना दायित्व निभाएँ, इसे औरों पर न थोपें।

वन बचाएँ, जीवन बचाएँ।

वर्ष 2011 से हिन्दी चेतना में लघुकथा को स्थान दिया गया है। वर्ष 2012 और 2019 में दो विशेषांक आ चुके हैं। हिन्दी चेतना का 26 वें वर्ष का अंक 103 'लघुकथा- चिन्तन एवं सृजन विशेषांक' के रूप में आपके हाथों में है। आशा है आपको यह अंक पसन्द आएगा। आप सबका सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत श्याम त्रिपाठी

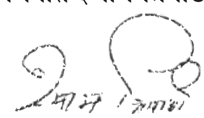

प्रमुख संपादक

आवरण पृष्ठ की चित्रकार : जैस्मिन जोविअल

नाम : जैस्मिन, उपनाम : जोवियल जैस्मिन

जन्म : 10 जनवरी

शिक्षा : एम. ए. ललित कला, एम.ए अंग्रेजी, कला में पीएच .डी ., मीरा बाई पॉलिटेक्निक नई दिल्ली से व्यावसायिक कला में डिप्लोमा, शंकर्स एकेडमी ऑफ बुक इलस्ट्रेशन एंड पब्लिशिंग, आईटीओ, नई दिल्ली से पुस्तक चित्रण और ग्राफिक डिजाइन में डिप्लोमा, कला चिकित्सा में डिप्लोमा।

सम्प्रति : अध्यापक, कला सुविधाप्रदाता, कलाकार, पुनर्चक्रणकर्ता, भित्तिचित्र कलाकार, पुस्तक चित्रकार, बच्चों की पुस्तक चित्रकार, कला चिकित्सक, बच्चों के उत्थान के लिए कार्यरत गैर सरकारी संगठन सुभग फाउंडेशन से जुड़ी हैं।

अभिरुचियाँ :» रंगों और ब्रशस्ट्रोक के माध्यम से रचनात्मकता व्यक्त करना, विभिन्न तकनीकों और शैलियों की खोज करना।

» स्केचिंग : त्वरित चित्रों के माध्यम से दृश्यों या विचारों को कैप्चर करना, विभिन्न विषयों और माध्यमों के साथ प्रयोग करना।

» लेखन : भावनाओं, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए शब्दों का उपयोग करके कहानियाँ, कविताएँ या निबंध तैयार करना।

अपशिष्ट पुनर्चक्रण से कला का निर्माण : बेकार पड़ी सामग्री को सुंदर और कार्यात्मक कलाकृतियों में बदलना, रचनात्मकता और नवीनता के माध्यम से स्थिरता और पर्यावरण-अनुकूल प्रथाओं को बढ़ावा देना।

भारतीय परंपराओं से प्रेरित लोक कला संलयन : इनकी रचनाओं में **मधुबनी, गोंड और भील जैसी विविध भारतीय लोक कला शैलियों के तत्वों का मिश्रण है।**

- jasminemaggo@gmail.com

कर्म पर करें गर्व : अब्राहम लिंकन

विजय जोशी
पूर्व ग्रुप महाप्रबंधक, भेल

बन जाता है आज सुखद,
कल भी सुंदर हो जाता है
अच्छे कर्मों को करने से
मन ही मंदिर हो जाता है

भारतीय समाज विभिन्न धर्मों का एक सुंदर सा गुलदस्ता है। यह गर्व की बात है पर शर्म की बात यह भी है कि आज भी वह भिन्न भिन्न तबकों में बँटा हुआ है, जहाँ आदमी की प्रतिष्ठा को उसके पेशे से जोड़कर देखा जाता है। कर्म कोई भी हो; पर यदि उसे पूरे समर्पण, श्रद्धा एवं शिद्दत से किया गया हो, तो वह गर्व की बात है, शर्म की नहीं। अपने सम्मान को दूसरों के नहीं, अपितु खुद के नज़रिए से देखना चाहिए।

अब्राहम लिंकन जब अमेरिका के राष्ट्रपति बने, उस समय उनके पिता अपने मूल व्यवसाय यानी शू मेकर से जुड़े हुए थे। चुने गए सांसदों को यह बात नागवार गुजरी कि एक निचले तबके का आदमी राष्ट्रपति पद पर आसीन है। पहले दिन जब वे सदन में भाषण देने खड़े हुए तो एक व्यक्ति ने उनके भाषण के बीच में उठकर कहा- मिस्टर लिंकन आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि आपके पिता ने मेरे पूरे परिवार के लिए जूते बनाए हैं। सारा सदन हँस उठा। सबको लगा, उन्होंने लिंकन का मजाक बना दिया। लेकिन लिंकन अप्रभावित रहे। उन्होंने उस व्यक्ति की आँख में आँख डालकर कहा - मुझे ज्ञात है कि मेरे पिता आपके लिए जूते बनाया करते थे। यहाँ अनेक ऐसे होंगे कि जिनकी सेवा उन्होंने की होगी और वे सब उनकी दक्षता से संतुष्ट होंगे।

लिंकन ने अपनी बात जारी रखी - उनके लिए जूते, सिर्फ जूते नहीं थे; बल्कि उन्होंने उसमें अपनी आत्मा को समाहित किया था। बताइए कि कभी किसी को उनसे कोई शिकायत रही। और यदि हो भी, तो मैं उसे सुधार सकता हूँ; क्योंकि मुझे भी जूते बनाना आता है। उन्हें कभी कोई शिकायत नहीं मिली। वे नैसर्गिक प्रतिभावान तथा सृजनकर्ता थे और मुझे उन पर गर्व है।

पूरा सदन स्तब्ध रह गया। वे नहीं समझ पा रहे थे कि आखिरकार यह कैसा आदमी है, जिसे अपने पिता के छोटे से काम पर गर्व था।

यही है अच्छे कर्म पर गर्व का निचोड़। जब भी आप कोई काम पूरे उत्साह, उमंग और प्रेमपूर्वक करते हैं, तो उसे मिट्टी से सोना सदृश महत्त्व प्रदान कर देते हैं। जब हम अपना काम ईमानदारी से कर रहे हों, तो हमें कोई दुखी नहीं कर सकता, जब तक कि हम खुद ऐसा न चाहें। जहाज इसलिए नहीं डूबते कि उनके आसपास पानी है; बल्कि तब डूबते है, जब उनमें पानी प्रवेश कर जाता है। बाहरी आलोचनाओं को अन्तस् में प्रवेश कदापि न करने दें। अपना कर्म करते रहें, मनोयोग से। वह आपकी जीवन यात्रा की पावनता को सुनिश्चित करेगा।

कर्म करो तो फल मिलता है
आज नहीं तो कल मिलता है।
जितना अधिक कुआँ हो गहरा
उतना मीठा जल मिलता है।
जीवन के हर कठिन प्रश्न का
जीवन से ही हल मिलता है।■

लघुकथा लेखन और रचनात्मकता

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

1- अनुशीलन

'लेखन' एक सामान्य शब्द है, जिसका मूल अर्थ केवल लिखना है। जो लिखा गया, वह निरर्थक से लेकर सार्थक तक कुछ भी हो सकता है। 'लेखन' के ध्वनित अर्थ से किसी गुणात्मकता जैसी विशिष्टता का बोध नहीं होता है। लेखन से लेकर रचनात्मकता तक एक लम्बी यात्रा और प्रक्रिया है, जिससे निरन्तर चिन्तन और सृजन के उन्नयन का बोध होता है। सीखना और निरन्तर परिमार्जन करना, एक दिन का काम नहीं; बल्कि निरन्तर स्वाध्याय की परिणति है। केवल किसी विषय में निष्णात की डिग्री प्राप्त कर लेना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है, उस ज्ञान और प्रयोग को अपडेट करते रहना। बहुत सारे ऐसे शिक्षक मिल जाएँगे, जो मास्टर डिग्री लेने के बाद 35-40 साल तक शिक्षण करते रहते हैं। उन्होंने जो कभी पढ़ा था, उसमें कुछ नहीं जोड़ते। कुछ भाषा-शिक्षक ऐसे भी देखे कि नई पुस्तक पढ़ना भी उन्हें रास नहीं आता। ऐसे शिक्षक, किसी पीढ़ी को कुछ नहीं दे सकते। वे अगर आज से पच्चीस-तीस साल पहले बने दोराहे या चौराहे पर खड़े हैं, तो उन्हें अप्रासंगकिक होते देर नहीं लगेगी।

उपर्युक्त बात मैं लेखकों पर भी लागू करता हूँ। कुछ केवल अपना लिखा हुआ ही पढ़ते हैं। वे खुद को एवरेस्ट के शिखर पर पहुँचा हुआ मान लेते हैं। यदि कोई एवरेस्ट के शिखर पर पहुँच भी जाए, तो वह वहाँ सदा नहीं रह सकता है। उसे कुछ घण्टों के बाद वहाँ से हटना/ उतरना ही पड़ेगा। एवरेस्ट पर पहुँचने के लिए उसे ऑक्सीजन जैसे बहुत से संसाधनों की आवश्यकता होगी। लेखन के बेस कैम्प से ऊँचाई पर पहुँचने के लिए विशेष प्रशिक्षण और कौशल की आवश्यकता होती है। जीवन के गहन अनुभव हों, उनको सही स्वरूप देने वाली भाषा हो, भाषा में सहजता की सुगन्ध हो। यह एक दिन का काम नहीं। स्वाध्याय की यह यात्रा साँसों की तरह निरन्तर चलने वाली होती है। आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में कहा है:

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

मम्मट ने काव्य/ साहित्य के जो प्रयोजन बताए हैं, उनमें सर्वप्रथम है 'यश'। यश प्राप्त करने के बाद 'धन की प्राप्ति' को दूसरा प्रयोजन माना है। तीसरा प्रयोजन, मम्मट के अनुसार 'व्यवहार ज्ञान' है। प्राचीन से अधुनातन तक साहित्य के माध्यम से व्यवहार स्वत: आ जाएगा।

मम्मट ने चौथा प्रयोजन 'शिवेतरक्षतये' को माना है। 'शिव+इतर +क्षतये' अर्थात् जो शिव से इतर है, अमंगल है, उसके विनाश के लिए, पाँचवाँ प्रयोजन मम्मट के अनुसार है, 'सद्यः परनिर्वृतये'। अर्थात् दुख का नाश और आनंद की प्राप्ति। रस या आनंद प्राप्ति तो काव्य के लिए है ही। उपदेश प्रत्यक्ष रूप में न होकर 'कान्तासम्मित उपदेश' की तरह मधुर होना चाहिए। सार रूप में देखा जाए, तो आनन्द के साथ-साथ लोकमंगल भी अभिप्रेत है।

एक चुप है, एक चीख रहा है, दोषी कौन है? दोषी चुप हो सकता है, एक चुप सौ को हराए भी चुप हो सकता है। मर्यादा का उल्लंघन न हो, इसलिए भी चुप हो सकता है। चोरी करने वाला चोर भी भीड़ में घुसकर 'चोर-चोर' चिल्ला सकता है, ताकि चोर पर किसी का ध्यान न जाए। चुप्पी और चीख का खुलासा ही सत्य को अनावृत्त कर सकता है। बिना खुलासा किए सही परिणाम तक नहीं पहुँच सकते।

कुछ लेखक यथार्थ की प्रस्तुति का दम भरते हैं; लेकिन एक बात अवश्य विचारणीय है; 'नाली में भरे कचरे का वर्णन यथार्थ नहीं, यथार्थ है, उस कचरे को निकालना, कचरा निकालकर सीढ़ियों पर सजाना यथार्थ के लिए अभिप्रेत नहीं।' अच्छी रचना में इसके लिए अवकाश नहीं। वह कोई भी विधा क्यों न हो। लघुकथा में सीधा -सपाट वर्णन या सामान्य तौर पर किसी सत्य का अत्यन्त सामान्यरूप से प्रकटीकरण रचनात्मकता नहीं है। कथ्य का कोई आग्रह न होने पर आंगिक चेष्टाएँ प्रस्तुति को कमज़ोर बनाती हैं।

सुना, देखा, लिख दिया- रचना की नियति नहीं। क्या जो देखा वही सच है या उससे परे भी कुछ है, क्या लिखा? क्यों लिखा? किसके लिए लिखा? यह सुनिश्चित हो सका या नहीं? रचना में प्राणों का संचार हुआ या नहीं? लिखने के बाद यदि लगा कि अन्तस् को विश्रान्ति मिली, भीतर कुछ अंकुरित हुआ, कुछ भीगा, तो समझो कुछ रचा गया। यह परिणति ही रचना है।

मौसमी लेखन और सामाजिक सरोकारों पर दायित्वपूर्ण लेखन दोनों अलग हैं। चुनाव आने पर नेताओं की करतूतों पर सतही और जोड़-तोड़ की घिसी -पिटी कथा लिखना, दंगों या किसी आन्दोलन और धरने का बिना कोई विश्लेषण किए, बिना विषयवस्तु की तह तक पहुँचे, नेपथ्य में छुपे षड्यन्त्रों को बिना जाने, दिहाड़ी पर लाए गए आन्दोलनजीवियों को अपने गढ़े गए रटे -रटाए जुमलों को खोद-खोदकर

उनके मुँह में ठूँसकर, एकतरफ़ा चित्रण करना, सुनी –सुनाई या अखबारी घटनाओं को लघुकथा मानकर प्रस्तुत करना, रचनात्मकता नहीं है। तात्कालिक घटनाओं पर कथ्य का चयन बहुत सावधानी से करना चाहिए। हर घटना, हर कथन में रचना बनने की सामर्थ्य हो, यह ज़रूरी नहीं। लिखने से लेकर रचना की परिपक्वता तक एक आँच हो, एक वैचारिक उद्वेलन हो। संवाद हों, तो पारस्परिक अर्थवत्तापूर्ण अनुबन्धन होना चाहिए, न कि विशृंखलित कथनमात्र। लेखक, केवल लेखक के रूप में सामने आए, किसी का पक्षधर या दल का प्रतिनिधि बनकर सामने न आए।

अच्छे लेखक को अन्धानुकरण से बचना चाहिए। रमेश के खेत में अगर पैंतीस साल पहले धान होता था, तो ज़रूरी नहीं कि मधोक के खेत में भी आज धान ही हो, वह भी ज़मीन के एक टुकड़े में, इतना सारा धान कि घर के खर्च के बाद भी बेचने के लिए बच जाए। और फ़सलें भी पैदा की जा सकती हैं, तिलहन और दलहन भी। ये अधिक महँगे भी बिकेंगे। कुछ लेखक और भी महान् हैं। वे किसी स्थापित रचनाकार की कथा के नीचे अपना नाम लिखकर निर्लज्जता को भी ठेंगा दिखा देते हैं। इस तरह के छल-छद्म से बचना चाहिए।

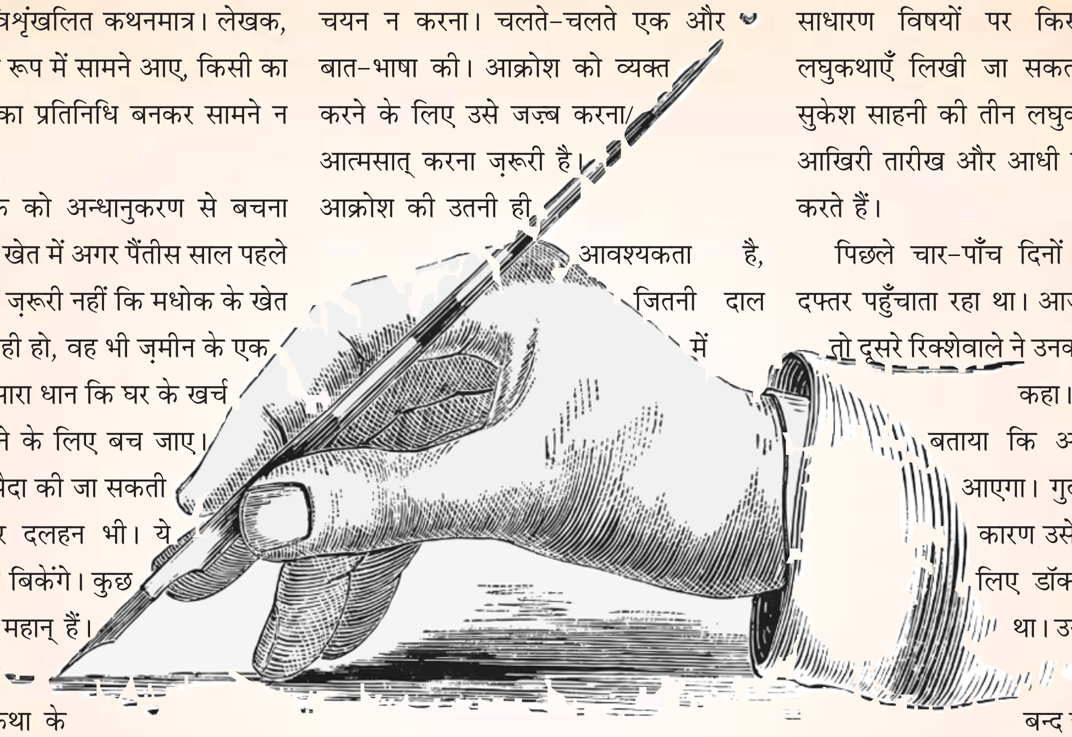

संसार बहुत बड़ा है, विषयवस्तु की दरिद्रता अच्छे लेखक के आड़े नहीं आती। गजानन माधव मुक्तिबोध की एक कविता है- 'बाँहें फैलाए रोज़ मिलती हैं सौ राहें'। उसी का एक अंश देखिए-

घर पर भी, पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
बाँहें फैलाए रोज़ मिलती हैं सौ राहें,
शाखा-प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं,
नव-नवीन रूप-दृश्यवाले सौ-सौ विषय
रोज़-रोज़ मिलते हैं...
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन् यह आधिक्य उनका ही
उसको सताता है,
और, वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है!!'

विषयों की कमी नहीं। समस्या है-ठीक से चयन न करना। चलते-चलते एक और बात-भाषा की। आक्रोश को व्यक्त करने के लिए उसे जज़्ब करना/आत्मसात् करना ज़रूरी है। आक्रोश की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी दाल में नमक की। आविष्ट होकर गालियाँ लिखना, भाषा की आवश्यकता नहीं, बल्कि लेखक की भाषिक दरिद्रता है। विषय को पूरी तरह धैर्य के साथ आत्मसात् करना चाहिए। अधीरता अच्छे लेखक को कमज़ोर ही नहीं करती, उसे अच्छा लिखने से दूर भी करती है। यह बात दूसरी है कि मौसमी प्रशंसकों की भीड़ वाली भेड़ें उसे आत्ममुग्धता के कुएँ में धकेलकर ही दम लेती हैं। नए ही नहीं कुछ पुराने रचनाकार भी इसका अपवाद नहीं हैं।

लेखक का विशिष्ट और व्यापक अध्ययन एक सामान्य-सी घटना को भी विशिष्ट रचना में बदल सकता है। लेखक को एकाधिक विषयों का गहन अध्ययन करना चाहिए, तभी उसके लेखन में निखार आ सकता है। कुछ लेखक बरसों से लिखते चले आ रहे हैं। अज्ञात मठाधीशों पर बूमरैंग चला रहे हैं; लेकिन आज भी वे कक्षा 5 की हिन्दी से पूरा परिचय नहीं कर सके। उनकी ज़िद है कि जो वे लिख रहे हैं, वही महत्त्वपूर्ण है।

मैं कुछ उदाहरणों से बताना चाहूँगा कि साधारण विषयों पर किस प्रकार अच्छी लघुकथाएँ लिखी जा सकती हैं। सर्व प्रथम सुकेश साहनी की तीन लघुकथाओं (अनुताप, आखिरी तारीख और आधी दुनिया) पर बात करते हैं।

पिछले चार-पाँच दिनों से असलम उन्हें दफ़्तर पहुँचाता रहा था। आज वह नहीं आया, तो दूसरे रिक्शेवाले ने उनको पहुँचाने के लिए कहा। रिक्शेवाले ने बताया कि असलम अब नहीं आएगा। गुर्दों की खराबी के कारण उसे रिक्शा चलाने के लिए डॉक्टर ने मना किया था। उन्हें पहुँचाने के बाद उसका पेशाब बन्द हो गया। अस्पताल ले जाते समय ही उसकी मृत्यु हो गई।

कल वह रिक्शा चलाते हुए धीरे-धीरे कराह रहा था। कभी एक हाथ से पेट पकड़ लेता था। डाक बंगले तक चढ़ाई पर उन्हें एकबारगी उसकी इच्छा हुई कि रिक्शे से उतर जाए: लेकिन वह नहीं उतरा। आज का रिक्शावाला हट्टाकट्टा और मज़बूत था। डाक बंगले की चढ़ाई पर पहुँचते ही वह 'रुको' कहकर उतर गया।

'वह किसी अपराधी की भाँति सिर झुकाए रिक्शे के साथ-साथ चल रहा था।' कल असलम के रिक्शे से न उतरना, उसे अपराधबोध से भर गया।

साहनी जी ने रोज़मर्रा के इस सामान्य विषय को कल किए गए कार्य के लिए अनुताप से भर दिया। जीवन में ऐसी बहुत सारी घटनाएँ होती हैं, जो अति साधारण और महत्त्वहीन होती हैं; फिर भी उनमें सूक्ष्म मर्म का ऐसा सूत्र निहित होता है कि वह हमारे मन-मस्तिष्क को उद्वेलित कर देता है। सामान्य घटना की विषादमयी परिणति हमारी चेतना को झकझोर देती है। कथ्य के महीन सूत्र की पकड़ अनुभूति की गहराई तक पहुँचकर कोंचने लगती है। यही अच्छी लघुकथा की विशेषता है। यह लेखक की सामर्थ्य है कि वह सामान्य -सी लगने वाली रचना को अपने जीवन-अनुभव से सींचकर किस प्रकार महत्त्वपूर्ण बना सकता है। सामान्य लेखक इसमें खुद कूद पड़ता और रचना को निष्प्राण कर देता।

'आखिरी तारीख' के वर्मा जी की जो मन:स्थिति है, वह हर सामान्य कर्मचारी की होती है। 'उनकी आँखें बंद थीं और दाँतों के बीच एक बीड़ी दबी हुई थी। ऐश-ट्रे माचिस की तीलियाँ और बीड़ी के अधजले टुकड़ों से भरी पड़ी थी।'

'दाँतों के बीच बीड़ी का दबा होना, ऐश-ट्रे माचिस की तीलियाँ और बीड़ी के अधजले टुकड़े' जैसे पदबन्ध वर्मा जी की आर्थिक स्थिति का सहज और विश्वसनीय चित्रण कर रहे हैं।

'दफ़्तर के दूसरे भागों से भी लड़ने-झगड़ने की आवाज़ें आ रही थीं।' ये आवाज़ें किसकी हो सकती हैं? दफ़्तर में पूरे महीने जो संयुक्त लूट हुई है, उसका बँटवारा हो रहा होगा, तो अपने स्वार्थ की पूर्त्ति के लिए भला कौन विवाद नहीं करेगा? या जिसका काम अटका हुआ होगा, वह समाधान के लिए बहस कर रहा होगा। लेखक ने पाठक के लिए संकेत भर कर दिया कि वह क्या अनुमान लगाता है।

लेखक ने सुरेश की मन:स्थिति और उसके आक्रोश को भी मूर्त्त किया है। उसका ध्यान घर के खर्चे को लेकर पत्नी से हुए झगड़े की तरफ चला गया। अपने क्रूर व्यवहार के बारे में सोचकर उसे हैरानी हुई। अब उसके मन में बड़े बाबू के प्रति गुस्सा न था, लेकिन उसे पत्नी के प्रति की गई ज्यादती पर पछतावा था।

हिन्दी में एक कहावत प्रचलित है- 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' अर्थात् बिना गृहिणी के घर भूतों के डेरे की तरह है। महाभारत में इस तथ्य को निम्न प्रकार स्थापित किया है-

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं
मतम्।।महाभारतम्

घर, घर नहीं है। गृहिणी से ही घर कहा जाता है। यदि घर गृहिणी से रहित है, तो उसे जंगल की तरह सुनसान माना जाना चाहिए। मनुस्मृति में नारी के सम्मान को इतना महत्त्व देते हुए कहा गया है - 'जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं' -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:।
यत्र तु एता: न पूज्यन्ते, तत्र सर्वा: क्रिया: अफला:।। मनुस्मृति 3/56।।

शास्त्र-वचन और उनका निर्देशन जनहित एवं पारिवारिक समरसता और सामंजस्य का सन्देश देते हैं। व्यक्ति अपने जन्मजात संस्कारों के साथ कुछ संस्कार समाज में रहकर अर्जित करता है। वे संस्कार अच्छे और बुरे, दोनों तरह के होते हैं। कुछ पति-पत्नी के सम्बन्ध ढाल और तलवार की तरह होते हैं, जिसमें सामंजस्य का स्थान कलह और संघर्ष ले लेते हैं। कुछ ऐसे पति/ पत्नी भी होते हैं कि उनका पूरा व्यवहार शत्रुवत् ही होता है। केवल अपने जीवनसाथी पर प्रहार करना। इस तरह के गर्हित व्यवहार के कारण धरती पर ही नरक अवतरित हो जाता है।

आधी दुनिया / सुकेश साहनी में पति का कठोर एवं अशोभनीय व्यवहार केवल प्रहार करना जानता है। लड़की की लम्बाई, फ़िगर्स, खाना बनाने से लेकर घर सँभालना और घर की साफ़ -सफ़ाई के सारे काम, 'आज की रात हम जो कहेंगे, करना होगा' का हिटलरी आदेश, उठने- बैठने, हँसने-बोलने पर सामन्ती अंकुश। कथा का समापन होता है- तुम्हारी ये मजाल! ...मुझे आँखें दिखाती हो! निकलो...अभी निकलो 'मेरे' घर से। पूरा जीवन अपमान में बीत जाए, भला यह भी कोई दाम्पत्य सम्बन्ध है!! पूरी लघुकथा में एकल संवाद के माध्यम से पति की क्रूर प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। प्रतिकार का अन्तर्द्वन्द और प्रतिरोध पत्नी के हृदय में उठा ही होगा; लेकिन यहाँ पाठक भी साधारणीकरण द्वारा उसका हिस्सा बन जाता है। पति के एक-एक संवाद की धमक पाठक को अपने हृदय पर महसूस होती है। पुरुष का एक -एक शब्द हथौड़े की तरह बजता है। मोनोलॉग के माध्यम से कथावस्तु को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करना कठिन है, जिसका निर्वाह साहनी जी ने बहुत सहजता से किया है। निकलो...अभी निकलो 'मेरे' घर से-वाक्य में 'मेरे' शब्द की तह में जाना आवश्यक है। इस शब्द में पूरा अहंकार छुपा है। अहंमन्यता, जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना, विवेकशून्यता और दुर्बलता है। घर-परिवार हो या कोई भी अन्य रचनात्मक समाज, अहंमन्यता, पतन का मार्ग खोल देती है। क्षुद्र मानव किसी शक्ति, पद, संस्था का पर्याय क्या होगा, वह खुद का भी पर्याय नहीं हो सकता।

इस लघुकथा में पूरा वैवाहिक जीवन प्रस्तुत कर दिया गया। 'कालदोष' की आधारहीन सोच ही इस रचना के शिल्प ने पलट दी। एकल संवाद के माध्यम से पति की क्रूर प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

हमारी मनोवृत्तियाँ हमसे जो न करा लें, वही कम है। कहीं हमारा अहंकार सिर चढ़कर बोलने लगता है, कहीं आभिजात्य हमारी सहजता छीन लेता है। जन्मना आभिजात्य रक्त में घुल जाए, तो उसका दूर होना बहुत कठिन है; क्योंकि वह हमें विरासत में मिला है। वह हमारे चिन्तन और कार्यों में बद्धमूल हो चुका है। 'छू लिया/ जानकी

वाही' की लघुकथा में इस अहंमन्यता की धमक और क्षरण दोनों को देखा जा सकता है।

हर सुबह स्कूल जाते समय सुहासिनी और सरसतिया की भेंट हो जाती है। उसे लगता है कि सरसतिया जानबूझ ज़ोर-ज़ोर से झाड़ू मारकर धूल उड़ाती है। एक के मुँह पर जातिगत दर्प और खीझ झलकती तो दूसरे के चेहरे से गुस्सा और नफ़रत। दोनों अपने -अपने म्यान में सिमटी रहतीं। कभी सरसतिया की बड़बड़ाहट- ''हमसे परे-परे जाएँगे? हम तो छूत की बीमारी हैं ना... ?''

एक दिन सरसतिया से दूर जाने की हड़बड़ी में सुहासिनी का पाँव जो मुड़ा, दर्द से दोहरी होकर वहीं गिर गई। सरसतिया ने हाथ का झाड़ू फेंक सुहासिनी को थाम लिया। खींच-तानकर पाँव की नस ठीक की और सहारा देकर खड़ा कर दिया।

नफ़रत गल गई- मुस्कुरा कर बोली -''हमने छू लिया तुमको।''

''सच कहा, तुमने तो हमारे मन को भी छू लिया'' -सुहासिनी ने सरसतिया के धूल भरे हाथों को प्यार से पकड़ लिया। लगा मनोमालिन्य का एक अभेद्य दुर्ग ढह गया। अन्तिम संवाद ने पूरी लघुकथा को मानवीय उदात्तता का मुकुट पहना दिया।

जातिगत एवं वर्गगत रूप से समाज को विकृत और अशक्त करने का प्रयास आज़ादी से पहले भी किया जाता रहा है। आज भी राष्ट्रविरोधी, विभाजनकारी शक्तियाँ इसी जातिगत विद्वेष को जगाने के विध्वंसक कार्य में लगी हैं। देश इन मानसिक विकृतियों के सहारे आगे नहीं बढ़ सकता। महत्तर जैसे सम्मानजनक पद को मेहतर बनाकर सेवाएँ लीं; लेकिन उसे आधारभूत सुविधाओं और उसके मानवीय अधिकारों से भी दशकों तक वंचित करके लोकतन्त्र को ठेंगा दिखाया गया।

हमारा व्यवहार बहुत से मनोवैज्ञानिक कारकों पर निर्भर है। इसमें 'पद' एक मुख्य कारक है। किसी को श्रेष्ठ और किसी को हीन बता देना अलगाव और विभाजन का कारण बनता है। पिछले सौ साल में इस तरह के चिन्तन को प्रोत्साहित किया है। किसी को रॉयल क़ौम कहकर, किसी को अल्पसंख्यक न होने पर भी अल्पसंख्यक कहकर, सबसे अधिक हक़ और सुविधा देकर, कहीं बड़े वर्ग से, जो उसके पास नगण्य भी है, उसे भी छीनकर भेद- दृष्टि का प्रसार किया गया। जनसेवक (भले ही वह आपादमस्तक भ्रष्ट हो) का ऐसा रूप गढ़ा गया कि वह सामान्य व्यक्ति (जो मन-प्राण से कर्त्तव्यनिष्ठ एव ईमानदार है) से कहीं ऊपर का प्राणी है, वही सर्वथा कुलीन है। सुभाष नीरव की 'धूप' और कमलेश भारतीय की 'मिसफिट' इसी श्रेणी की लघुकथाएँ हैं।

'धूप' लघुकथा में अधिकारी खिड़की से झाँकने पर देखता है कि लंच के समय कर्मचारी पार्क की हरी-हरी घास पर पसरी सर्दियों की गुनगुनी धूप का आनंद ले रहे हैं; लेकिन वे जब से यहाँ आए हैं, उस गुनगुनी धूप के लिए तरस जाते हैं। वहाँ सिंगल स्टोरी! ऑफ़िस के सामने खूबसूरत छोटा-सा लॉन था। यहाँ उनका मन धूप का आनन्द लेना चाह रहा था; लेकिन इस विचार को त्याग दिया। इतना बड़ा अफ़सर और अपने मातहतों के बीच नीचे घास पर बैठे! वे खिड़की से हटकर सोफ़े पर अधलेटे-से हो गए। तन्द्रा के कारण लगा कि वे पार्क में हैं। अभी लंच समाप्त होने में बीस मिनट शेष थे। उनके क़दम पार्क की ओर बढ़े। लोगों ने उन्हें देखकर भी अनदेखा कर दिया था। वे चुपचाप एक कोने में अपना रूमाल बिछाकर बैठ गए और सर्दियों की गुनगुनाती धूप में नहाने का आनन्द लेने लगे। लंच खत्म होने पर वे भी लोगों की भीड़ का एक हिस्सा होते हुए अपने ऑफ़िस में पहुँचे। धूप की सुखानुभूति उन्हें नहला गई।

यह 'धूप' केवल सर्दी की धूप या उसकी गर्माहट नहीं। यह किसी बँधे-बँधाए दायरे से निकलने की गरमाहट है। जब तक हम मन में खुद को विशिष्ट समझते रहेंगे, बड़े 'पद' का भाव तब तक सहज आनन्द से वंचित ही रखेगा। पद के इस गरिष्ट भाव से मुक्त होना आवश्यक है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है। बड़े पद पर बैठा व्यक्ति तभी सफल हो सकता है, जब उसके अधीनस्थ उसको अपना हितैषी समझें। कार्य के अनुसार सब महत्त्वपूर्ण हैं। एक ईमानदार चपरासी, बेईमान सहयोगी अधिकारी से अधिक बड़ा है। इस बात को समझ लेना चाहिए।

'मिसफिट / कमलेश भारतीय' में उसे अचानक बड़ा पद मिला, उसी पद के अनुरूप गाड़ी बंगला और ड्राइवर भी मिले। ऑफिस निकट था, तो पैदल ही पहुँच गए। सबने समझाया कि ऐसे नहीं आते। ऑफिस का डेकोरम नष्ट होगा। अगले दिन दफ़्तर की गाड़ी से आया, लेकिन ड्राइवर की प्रतीक्षा किए बिना स्वयं दरवाज़ा खोलकर उतर आए। फिर साथियों ने टोका कि दरवाज़ा ड्राइवर को खोलने दीजिए। दोपहर को खाना खाने गए, तो ड्राइवर को भी साथ ही बैठा लिया। क्लब के प्रेज़िडेण्ट ने कहा- 'ड्राइवर यहाँ अलाउड नहीं हैं, आप इसे बाहर बिठाकर लंच करवा सकते हो! उसे शिमला का मॉल रोड याद आ गया, जहाँ लिखा रहता था- 'डॉग्स एण्ड इंडियन्स आर नाट अलाउड!'

उसे लगा कि वह उस पद के अयोग्य तो नहीं।

आदमी वास्तव में जो है, उसे वह न रहने देना, बल्कि उसे वह बनाने का प्रयास करना, जो वह है ही नहीं। कृत्रिमता का यह बड़प्पन उससे उसकी सहजता, आत्मीयता और निःश्छलता छीन लेता है। कृत्रिमता का आवरण किसी भी व्यक्ति को कुछ भी दे दे, लेकिन उसे उसकी जड़ों से छिन्नमूल अवश्य कर देता है।

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

प्रेम, प्रणय, अनुराग, स्नेह आदि बहुत सारे शब्द हैं, जो हमारे अन्तर्मन की विशद व्याख्या करते हैं। 'प्रेम' वास्तव में वह शब्द है, जिसकी कितनी भी व्याख्या क्यों न की जाए, फिर भी अधूरी है। यह जीवन की वह लच्छी है, जिसे जितना सुलझाया जाए, उतनी उलझती है। जितने नाम दिए जाएँ, सब कम पड़ जाते हैं; लेकिन यह 'प्रेम' किसी बन्धन में नहीं बँधता। बाह्य प्रदर्शन या हाव, प्रेम का लक्षण हो सकता है, प्रेम का भाव नहीं। प्रेम जीवन की आन्तरिक ऊष्मा है। एक ओर यह जीवन की उद्दाम जिजीविषा है, तो साधारण स्तर पर कहें, तो यह जीवन का वह सूक्ष्म सूत्र है, जो मानवीय सम्बन्धों को जोड़ने की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसे केवल अनुभव किया जा सकता है। जब आन्तरिक ऊष्मा का ह्रास होता है, तो संवेदनहीनता बढ़ती है, जिसका समापन संवादहीनता में होता है। हृदय की निर्मलता को आँकनेवाला कोई यन्त्र नहीं होता है, लेकिन प्रतिक्रिया का बैरोमीटर प्रत्यक्ष रूप से भाव की चुगली कर देता है। एक बात और है, वह यह कि प्रतिरोध, घृणा, प्रहार, उपेक्षा, लांछित करके बलात् दुर्ग जीते जा सकते हैं, किसी का प्रेम नहीं जीता जा सकता है। प्रेम दूसरे पर अधिकार जताकर उसको जीतता नहीं; बल्कि समर्पित होकर स्वतः उसका हो जाता है। बलात् एक तरफ़ा प्रेम करने वाले, किसी पर तेज़ाब फेंककर या शारीरिक आघात करके प्रेम नहीं पा सकते।

प्यार को कोई नाम नहीं दिया जा सकता। यह गहन अनुभूति है, जिसे किसी सम्बन्ध या परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता है। यह नाम से परे है, केवल अनुभवजन्य है। प्रेम में कोई अवस्था निर्धारित नहीं होती। किसी पात्र को मानव, वनस्पति, पशु-पक्षी में वर्गीकृत करना भी आवश्यक नहीं। मानव में भी भाई, बहन, प्रेयसी, पत्नी, पुत्र-पुत्री का विभाजन भी सही नहीं। यदि प्रेम है, तो समर्पण -भाव होगा ही, यदि प्रेम नहीं है, तो ये भी एक -दूसरे के खून के प्यासे हो सकते हैं। धन-सम्पत्ति को लेकर इनके लाखों मुकदमे लड़े जा रहे हैं। कोई भी सम्बन्ध क्यों न हो, जो तलवार और ढाल की तरह मिलते हैं, वे प्रेम नहीं कर सकते और न किसी सम्बन्ध का निर्वाह कर सकते हैं। तुलसी ने ऐसे लोगों के लिए सुन्दरकाण्ड में विभीषण के माध्यम से कहा है- बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

पति-पत्नी के सम्बन्धों में प्रेम के लिए दक्ष स्मृति में कहा गया है कि जहाँ पति-पत्नी की अनुकूलता है, वहीं स्वर्ग है। जहाँ प्रतिकूलता रहती है,वहाँ नरक ही है। सही कहा जाए, तो आपस का सच्चा प्रेम तो स्वर्ग में भी दुर्लभ है-

अनुकूल कलत्रोय-स्तस्य स्वर्ग इहैव हि।
प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशय ॥
स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्योतदनुरागः परस्परम्।

प्रेम को केन्द्र में रखकर बहुत कम लघुकथाएँ लिखी गई हैं। सम्भवतः इसका कारण यही है कि लघुकथा की मूल प्रवृत्ति विरोध-केन्द्रित है। स्वयं को छोड़कर अधिकतम का विरोध करना। यहाँ मैं 1-पाठ / सुकेश साहनी, 2-चकोर / रचना श्रीवास्तव, 3-कैमिकल लोचा/ सविता पाण्डे, 4 आधे किवाड़ का पूरा जीवन/ चैतन्य त्रिवेदी का उदाहरण देना चाहूँगा।

'पाठ / सुकेश साहनी' में फिज़िक्स की ट्यूशन पढ़ने वाली पाखी का प्रसंग आता है, जिसके पापा एक हादसे में गुज़र गए। इस प्रेम कथा का आरम्भ बहुत शालीनता से हुआ है, जिसका पहला कारण था, ट्यूशन के समय पाखी की माँ का अकारण आसपास न मँडराना।

पाखी को उसके घर जाकर फिज़िक्स की ट्यूशन पढ़ाते मुझे एक साल और पाँच महीने हो गए थे। पंद्रह-सोलह वर्षीया खूबसूरत, मासूम-सी पाखी बहुत ही मेधावी थी। उसके पापा बचपन में ही एक हादसे में गुज़र गए थे। तब से उसकी मम्मी का तो जैसे एक ही लक्ष्य था-अपनी बेटी को पढ़ा-लिखाकर काबिल बनाना। पाखी की माँ दूसरों से अलग थी, एक तो मेरा बहुत सम्मान करती थीं, दूसरे ट्यूशन के समय बेमतलब आस-पास मँडराती नहीं थीं।

पिछले कुछ दिनों से मैं पाखी में कुछ बदलाव महसूस कर रहा था, 'जब मेरा ध्यान किताब में होता, तो वह अपलक मेरी ओर देखने लगती, ''सर, आपकी शादी हो गई?'' पूछना, ''सर! आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।'' पाखी का शरारत से मुस्कराते हुए कई बार पलकें झपकाना। ''पाखी! पढाई में कंसन्ट्रेट करो'' कहने के बाद भी-''सर! आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।'' -इस मधुर कथन का दिमाग़ से न निकलना, परेशान कर रहा था। एक दिन मैं ट्यूशन देने पहुँचा, तो वह मुझे बहुत गंभीर लगी। उसकी माँ बाजार गईं थी। उसे मुझसे अपने मन की बात करनी है, जो ममा के सामने नहीं कर पाएगी।

एक दिन मेरा दाहिना हाथ पकड़ लिया और मुझे अपने कमरे की ओर खींचकर ले जाने लगी। पाखी की यह चेष्टा और

किशोरावस्था का यह अनुराग या आकर्षण एक बारगी पाठक को चलताऊ चिन्तन की ओर जाता हुआ लगता है। कोई अन्य लेखक होता, तो इसे मादक स्पर्श या अलिंगन के खाँचे में रखकर यहीं कथा का समापन कर देता।

यहीं से लेखक रचनात्मकता की ओर बढ़ता है। अगले ही क्षण हम आदमकद आईने के सामने थे। ''वह आगे थी, उसके पीछे मैं था। मेरा दाहिना हाथ अभी भी उसके हाथ में था। अब

वह एकटक मेरी आँखों में झाँक रही थी। मेरे देखते ही देखते उसकी आँखें डब-डब करने लगीं।''

निम्नलिखित संवाद एक झटका देता है, जिससे सहृदय पाठक चौंकता और चिहुँकता है-

वह रुँधी हुई आवाज़ में बोली, ''सर,आइ लव यू!!''

उसके हाथ में मेरा हाथ थरथरा गया। ध्यान देने की बात है कि थरथराने वाल हाथ युवा शिक्षक का है, पाखी का नहीं; कथा अपनी चरम सीमा पर है। पाठक का रोम रोम कान बनकर सुनने को आतुर है। वह अपनी बात को पूरा करके अर्न्तद्वन्द से उबरने का प्रयास करती है-

''इस जन्म में मुझे डैडी का प्यार नहीं मिला। मैं चाहती हूँ, अगले जन्म में मुझे आप जैसे डैड मिलें!!'' -डब-डब करती आँखों से आँसू बह निकले।

यही वे पंक्तियाँ हैं, जो एक -एक सोपान तय करके, अन्तर्मन का माधुर्य छलका देने को आतुर हैं। इतना कहकर उसने सब कुछ कह दिया।

अब इन दो वाक्यों को देखिए-1-कहकर वह आईने के फ्रेम से बाहर हो गई। फ्रेम से बाहर होना निष्पाप, निर्मल हृदय का, र्निद्वन्द होने का और निश्छल प्रेम का उदाहरण है। 2-'कमरे में मैं अकेला खड़ा था, पर अब आईना मुझे देखे जा रहा था।' शिक्षक उस अप्रत्याशित एवं भाव-विभोर करने वाले 'कथन' से बाहर नहीं निकल पाया। वह मोहाविष्ट -सा खड़ा रह गया। अब उसे आईना देख रहा था कि विज्ञान पढ़ाने वाले समर्थ शिक्षक! अब किशोर मनोविज्ञान को समझो और उसे वह प्रेम देने का प्रयास करो, जिसकी उसके जीवन में कमी है। कैशोर्यावस्था के प्रेम को अभिव्यक्त करती यह बेजोड़ लघुकथा है, जो सार्थक कथ्य और निहित उद्देश्य का पूर्णतया निर्वहन करती है, वह भी पूरी सहजता से। शिक्षकों को सचेत करने के लिए यह कथा किसी पाठ से कम नहीं। केवल छात्रों को ही पाठ नहीं पढ़ना पड़ता, कभी- कभी शिक्षकों को भी पाठ पढ़ने की आवश्यकता होती है। 'अब आईना मुझे देखे जा रहा था।' का समापन वाच्यार्थ पर न होकर व्यंग्यार्थ पर हो रहा है। 'आईने का मुझे देखना' पाठ शीर्षक को सार्थक करता है। दोनों पात्र परिचित हैं, अत: इसे साहचर्यजन्य प्रेम की श्रेणी में रखा जाएगा।

रचना श्रीवास्तव की लघुकथा 'चकोर' अलग तरह की प्रेम कथा है, एक तरफ़ा प्रेम की। इसमें परिचय या साहचर्य भी नहीं। 'चार बजते ही उस घर की बालकनी में दूधिया से रंग की एक नाज़ुक सी लड़की आती, कभी अपने बाल सुखाती, कभी वहाँ के गमलों में पानी देती और कभी अरगनी पर कपड़े फैलाती।' एक लड़का ठीक उसी समय आता और पेड़ के नीचे खड़ा होता और उस लड़की को निहारता। उसे लुभाने का प्रयास भी करता। उसके इस आकर्षण को उसके मित्र भी जान गए और वे भी उसके साथ आने लगे और उसे प्रेरित करने लगे। एक दिन वह फ़ाटक खोलकर इमारत में आ गया। उसने देखा कि अलगनी टूटकर नीचे गिर गई है। इस सबसे अनजान लड़की, नित्य प्रति के अभ्यास के कारण डोरी को टटोल रही है। लड़का हतप्रभ। डर के कारण डोरी को नहीं बाँध सका। भरपूर दृष्टि से उसको देखकर उदास मन से वापस आ गया। उदास मन से लड़के ने प्रकट रूप में दोस्तों को सुनाकर निर्णय लिया-, ''पास से देखने पर मुझे लड़की बिल्कुल नहीं जमी, बेमतलब समय ख़राब किया। अब कभी यहाँ नहीं आना है, चलो चलते हैं।''

सभी वहाँ से चले गए। उस लड़के ने जो कहा, वह सत्य नहीं था। वह अपने गहन और उदासी से सिंचित प्रेम को किसी से साझा नहीं करना चाहता था। प्रेम हृदय की भीतरी तहों में छुपा होता है। वह किसी से साझा किया भी नहीं जा सकता। लड़की नहीं जानती कि उसे कोई प्रेम करता है। लघुकथा का शीर्षक इस कथा के सारे सूत्र खोल देता है। एक पुराना गीत अनायास याद आ गया-'चाँद को क्या मालूम चाहता है उसे कोई चकोर'। लड़की नेत्रहीन है और लड़के की किसी गतिविधि से अवगत नहीं है। चाँद भी क्या जाने कि कोई चकोर उसे एकटक निहार रहा है।

'अब कभी यहाँ नहीं आना है' क्या यह कथन सत्य है? कदापि नहीं। चकोर लघुकथा की ऊँचाई, इसकी रचनात्मकता और औदात्य इस अन्तिम वाक्य में सामने आते हैं-

ख़ास बात यह कि वह लड़की अभी भी रोज़ाना चार बजे बालकनी में आकर अपने रोज़ के काम करती है और वह लड़का भी प्रतिदिन पेड़ के नीचे खड़े होकर चुपचाप उसको निहारता रहता है....

रचना श्रीवास्तव ने बहुत कम लघुकथाएँ लिखी हैं। इनका कोई लघुकथा -संग्रह तो आया ही नहीं। 'प्रेम' विषय पर केन्द्रित यह लघुकथा अपनी मार्मिक प्रस्तुति, मँजे हुए शिल्प के कारण अभिनन्दनीय है।

सविता पाण्डे की लघुकथा -कैमिकल लोचा, दाम्पत्य सम्बन्धों की अनोखी लघुकथा है। अगर पति-पत्नी में गहरा प्रेम रहा है, तो किसी अहमन्यता के कारण या और बेहतर जीवन की तृष्णा में अलगाव होने पर भी, वह पूरी तरह मिट नहीं जाता। कुछ आधे अधूरे क्षण बचे रहते हैं। अलगाव के बाद भी उन क्षणों का अभाव सालता है। अलगाव हो गया, लेकिन प्रेम की नम्यता और लचक नष्ट नहीं हुए। चम्पा ने भोलेराम के साथ बसा- बसाया घर छोड़कर किसी और को अपना लिया। एक ही कपड़े में चली गई। बच्चों की भी चिन्ता नहीं की। भावहीन हुए भोलेराम ने न उस पर क्रोध किया और न उसके लिए

फ़रार या फ़ुर्र होने जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया। वह हर शाम रिक्शा चला लेने के बाद दूर से चम्पा की गृहस्थी को निहार लेता। लगातार कई दिनों से एक ही साड़ी पहने चंपा को देखा तो कपड़ों की कमी का एहसास हुआ। एक दिन चंपा के सारे कपड़े बाँध उसके नए घर पहुँच गया। ''हर रोज एक ही साड़ी मत पहना करो।''-कथन में भोलेराम की पीड़ा ही नहीं, उसका प्रेम भी बोल रहा है। चम्पा ने उसको जल्दी वापस जाने को कहा।

अन्तिम पंक्ति में लेखिका ने जो कहा है, वह इस लघुकथा का प्राण तत्त्व है। भोलेराम का छुपकर भागना, वह भी नए प्रेमी की तरह-

'भोलेराम ने चंपा को उसकी साड़ियों की पोटली थमाई और यूँ छुपकर निकल भागा जैसे उसका कोई नया प्रेमी हो!'

यह प्रेम की विवशता है कि पूर्व पति उसे एक ही साड़ी में नहीं देख सकता। छुपकर उसके पास जाने का अर्थ है, अभी सब कुछ ख़त्म नहीं हो गया। इस लघुकथा में प्रेम का एक अलग ही कोण है। यह लेखिका का सामर्थ्य ही है कि अछूते विषय के विरल- से सूत्र को थामकर भोले राम के ऊर्ध्वगामी दाम्पत्य प्रेम को मार्मिक स्वरूप प्रदान किया है।

मानव मन का संसार बहुत व्यापक है। उसमें कितनी ही तरंगें उठती हैं। उन सबका विश्लेषण बहुत जटिल है। प्रेम तो स्वयं में बहुत तुनकमिज़ाज होता है। न जाने कितनी पर्तों में दबा-छुपा रहता है। हम स्वयं को भी नहीं समझ पाते, दूसरों को क्या समझेंगे!

वेद, उपनिषद् एव स्मृति-ग्रन्थों में नारी के महत्त्व का विशद् वर्णन ही नहीं, स्थापना भी है। पाराशर स्मृति में कहा गया है कि एक पहिए पर रथ नहीं चल सकता, एक पंख से पक्षी नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार बिना पत्नी के पुरुष भी सब कार्यों में अयोग्य और अधूरा है। चाणक्य नीति में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि जिसके घर में न माता हो और न स्त्री प्रियवादिनी हो, उसे वन में चले जाना चाहिए; क्योंकि उसके लिए घर और वन दोनों समान हैं-

माता यस्ये गृहे नास्ति, भार्या चाप्रियवादिनी।
अरण्य तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्।

नारी को सम्मान दिए बिना सच्चा प्यार नहीं पनप सकता। उसे रूढ़ियों की आदर्श कहे जाने वाली बेड़ियों में जकड़ा जाएगा, तो परिवार के लिए वह अभिशाप हो जाएगा। दोनों में सामंजस्य और सन्तुलन आवश्यक है।

चैतन्य त्रिवेदी की लघुकथा 'आधे किवाड़ का पूरा जीवन' में असन्तुलन के उसी पक्ष पर चोट करते हैं, जहाँ नारी को उपेक्षित किया जाता है। उसे हाड़-मांस का एक पुतला मान लिया जाता है। उसकी कोमल भावनाओं की उपेक्षा की जाती है। कथा की इन पंक्तियों को देखिए-

'जब वह पहली पहली दफा आई थी, किवाड़ पूरा खुला था। फिर उस घर में जीना शुरू किया तो आधा किवाड़ ही खुला रहता। वह आधे किवाड़ का जीवन जीती रही। उस आधे किवाड़ में अधूरी नजर से पूरा जीवन जी लिया उसने। सारे बसंत हँस लिये। उस घर के आधे किवाड़ के पीछे सारे सावन भिगो दिए।

जब आई,पूरा किवाड़ खुला था। घर में जीना शुरू किया तो आधा किवाड़ ही खुला रहता। इन विषम परिस्थितियों में उसने अधूरी नज़र से पूरा जीवन जिया। (जो पूरा जीवन जिया, वह भी अधूरा ही होगा)

इन पंक्तियों में बसन्त का हँसना और आधे किवाड़ के पीछे सारे सावन भिगो देना उस नारी के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना रही। उसने खुलकर जीवन जिया ही कहाँ। सब तो अधूरा ही था। परम्पराओं की बेड़ियों में जकड़ी वह इच्छा होने पर भी वह पूरा जीवन न जी सकी।

'गुजरती बारातें, नाच-गाने सब कुछ आ किवाड़ से देखती रह जाती।' से उसका दर्द छलकता है, छलककर बाहर नहीं आ पाता। एक बन्द सन्दूक में ढल जाना, उसके रूढ़िग्रस्त जीवन की पराकाष्ठा थी। किसी भी व्यवस्था का यह विद्रूप, विरोध और प्रतिकार को जन्म देता है। आहत और लाचार होकर वह जिस पूरे खुले किवाड़ से भीतर आई थी, उसे पूरा खुला छोड़कर चली गई। दुर्भाग्य की बात यह है कि उम्रदार बुज़ुर्ग फिर उन्हीं रूढ़ियों का यह कहकर पोषण कर रही हैं-''मजाल है कभी वह पूरे किवाड़ खोल बाहर आई हो!'' उन्हें उस बेचारी के हारे-थके हाथों से किवाड़ों का सहारा लेना, टूटे घर को निहारने की व्यथा को सहन करने का एहसास कभी हुआ ही नहीं।

चैतन्य त्रिवेदी ने अपनी विशिष्ट शैली में 'आधे किवाड़ का पूरा जीवन' जिस प्रकार बेपर्द किया है, वह किसी भी नारी की गहन पीड़ा का भावार्थ बन गया है। अन्तिम पंक्ति तक पहुँचते-पहुँचते यह लघुकथा अपनी रचनात्मकता और भाषा- कौशल से पाठक के मन को भाव प्रवण कर जाती है।

संघर्ष व्यक्ति को बुरी तरह तोड़ देता है। जिसका जीवन दु:खों और संघर्षों से भरा है, उसके लिए अकस्मात् आया सुख भी दु:ख जैसा ही चौंकाने वाला होता है। गरीबी और भूख से जूझने वाली माँ - और बेटी अंजलि की संघर्ष कथा को प्रस्तुत करने वाली हरभगवान चावला की 'थाप' लघुकथा में यही कटु सत्य उजागर होता है। माँ को विधवा पेंशन मिलती, तो बेटी उसके साथ किसी के खेत में कपास चुगने जाती, किसी के यहाँ बर्तन माँज देती। गोबर बटोरकर उपले बनाती और बेचती है। विषम परिस्थितियों में भी बेटी पूरी तन्मयता से परिश्रमपूर्वक पढ़ाई करती रही।

मोबाइल पर माँ को उसके सब इंस्पेक्टर पुलिस के चयन की सूचना बेटी के मित्र दीपक ने दी थी। माँ न कुछ समझ पाई। विश्वास न करके चारपाई पर गिर गई। बेटी के हिलाने-डुलाने पर फोन की ओर इशारा किया। दीपक से बात करने पर अंजलि को पूरी सूचना मिली।

जिसने जीवन में सदा अशुभ ही सुना हो, कभी कुछ भी अच्छा न सुना हो, तो उसको इतनी अच्छी खबर झटका ही देगी। थाप कहानी में जीवन के गहन संघर्ष से उपजी खुशी भी, उसे किस प्रकार विचलित कर देती है! इस लघुकथा की अन्तिम पंक्ति- ''ढोल के शीर्ण पर्दे पर ज़ोरदार थाप पड़ेगी तो पर्दा फटे भले ही न, उखड़कर गिर तो ज़रूर जाएगा।'' कथा के प्रभाव को और अधिक बढ़ा देती है। कथा के सभी संवाद परस्पर अनुस्यूत होकर कथा-प्रवाह को और भी तीव्र और सम्प्रेष्य बना देते हैं।

अंजू खरबन्दा की लघुकथा 'अपराजिता' परिवार के औपचारिक सम्बन्धों की आड़ में छल-छद्म से विरूपित चेहरों की पहचान कराती है। पति की मृत्यु के बाद संयुक्त परिवारों में निराश्रित पत्नी को झूठे दिलासे देकर सम्पत्ति पर काबिज़ होने के सारे प्रयास किए जाते हैं। सम्बन्धों की बिसात पर शतरंजी चालें चलकर असहाय को और अधिक दीन-हीन करने के प्रयास किए जाते हैं। धूर्तता में पारंगत अधिकतर लोग इसमें सफल रहते हैं। दुनियादारी से अनजान उमा पिछले तीन महीनों से संयुक्त परिवार के कुचक्र में फँसती जा रही थी। एक बेटी ब्याही जा चुकी थी। एक और विवाह योग्य थी।

जब जेठ ने मकान के पेपर हस्ताक्षर करने के लिए उमा के सामने रखे और कहा, तो वह कुटिल मुस्कान के पीछे छुपे षड्यन्त्र को ताड़ गई। उमा ने दामाद को पेपर दिखाने की बात की, तो जेठ भड़क गए। वह सारा खेल समझ गई।

''अपना घर, कारोबार सब आपके नाम करके मैं आश्रित नहीं बनना चाहती जेठ जी... और हाँ मुझे ऐसे किसी सहारे की कोई आवश्यकता नहीं, जो मुझे ही बेसहारा बना दे।''- कहते हुए उमा ने वे कागज टुकड़े-टुकड़े कर डस्टबिन में डाल दिए।

असहाय स्त्री प्राय: ऐसे अवसर आने पर घर के लोगों पर विश्वास करके छल का शिकार होकर पूरा भविष्य अन्धकारग्रस्त कर लेती है, लेकिन उमा ने प्रतिरोध का मार्ग अपनाकर अपना बचाव कर लिया।

कभी न कभी प्रत्येक व्यक्ति को एकाकीपन एक अलग दिशा की ओर ले जाता है। यह पूरा जीवन एक रंगमंच है, जिस पर आकर हम सब अभिनय करते हैं। सामाजिक परिवेश में मनुष्य का व्यवहार परिस्थिति, पात्र, समय एवं मन:स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। नेपथ्य में बहुत कुछ घटित होता रहता है, जो प्रकटत: दृष्टिगोचर नहीं होता है। समुद्र में जो हिमशैल ऊपर दिखाई देता है, वह केवल उतना ही नहीं होता है। समुद्र के भीतर, बहुत गहरे तक उसकी पैठ होती है। जो यह नहीं समझते, वे उससे टकराकर खण्डित हो सकते हैं। सीमा पर तैनात सैनिक शौर्य का स्वरूप होता है, लेकिन कुछ पल ऐसे होते हैं, जिसमें उसको किसी की निकटता चाहिए, भावात्मक स्पर्श, शब्दों की थपकी, माथे पर किसी की ऊष्मित छुअन। वह भी अपने घर पर पत्नी, बच्चों को छोड़कर मोर्चे पर आया है। भले ही मोबाइल फोन जैसे संसाधन हों, फिर भी वह अपने परिवार से स्वेच्छया सम्पर्क नहीं कर सकता। कभी-कभी किसी अभियान विशेष के कारण दीर्घ अवधि तक उसका पारिवारिक संवाद भी नहीं हो पाता। उसकी यह स्थिति, उसके जीवन की दुश्चिन्ता, पत्नी और बच्चों को भी मानसिक रूप से प्रभावित करती है। आराम का जीवन जीने वाला सामान्य नागरिक उनकी पीड़ा को नहीं समझ सकता। कुछ तो उनको लांछित करने के लिए निर्मम प्रवचन करके अपना मानसिक दिवालियापन तक प्रकट कर देते हैं।

अनीता सैनी 'दीप्ति' की लघुकथा नेपथ्य में वही मनोवैज्ञानिक प्रभाव व्यंजित होता है। दिनभर घर-परिवार के कार्यों में व्यस्त और जूझते हुए, उसे कुछ सोचने-विचारने का समय नहीं मिलता होगा। रात के एकान्त में जिस मानसिक थकान और एकाकीपन से उसका सामना होता है, उसे भी कोई ऐसा मधुर स्पर्श नहीं मिल पाता, जिससे वह सारी थकान भूल जाए। लेखिका ने आर्मी हॉस्पिटल के साइकेट्रिस्ट डॉक्टर के पास पहुँची महिला के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को उजागर किया है। महिला का यह कहना-''पिछले कुछ समय से मेरे बालों की सफ़ेदी बढ़ती जा रही है। जीवन में कोई समस्या नहीं। मन शांत है, फिर भी... ?'' यह 'फिर भी... ?' का पद हिमशैल-सी गहराई के साथ बहुत कुछ छुपाए हुए है।

डॉक्टर उससे दिनचर्या के अलावा उसकी मानसिक डाइट प्लान पूछता है, तो वह अनभिज्ञता के कारण अचकचा जाती है- ''मानसिक डाइट प्लान ? '' स्वत: मिलने वाला नहीं, बल्कि जो फ़ालो किया जाता है वह डाइट प्लान। डॉक्टर स्पष्ट करता है- यहाँ! सैनिकों से मानसिक डाइट प्लान फॉलो करवाए जाते हैं। वहीं मैं समझ सकता हूँ, समाज में उनकी पत्नियों से उसका निर्वहन करवाया जाता है।''

सैनिक-पत्नी होने के कारण अनीता सैनी ने नेपथ्य की व्यथा को गहनता से समझा है। 'मानसिक डाइट प्लान' का प्रत्यय इस लघुकथा की धुरी है। लेखिका ने इस तथ्य से जुड़े कथ्य को अधिक विश्वसनीय बना दिया है। ■

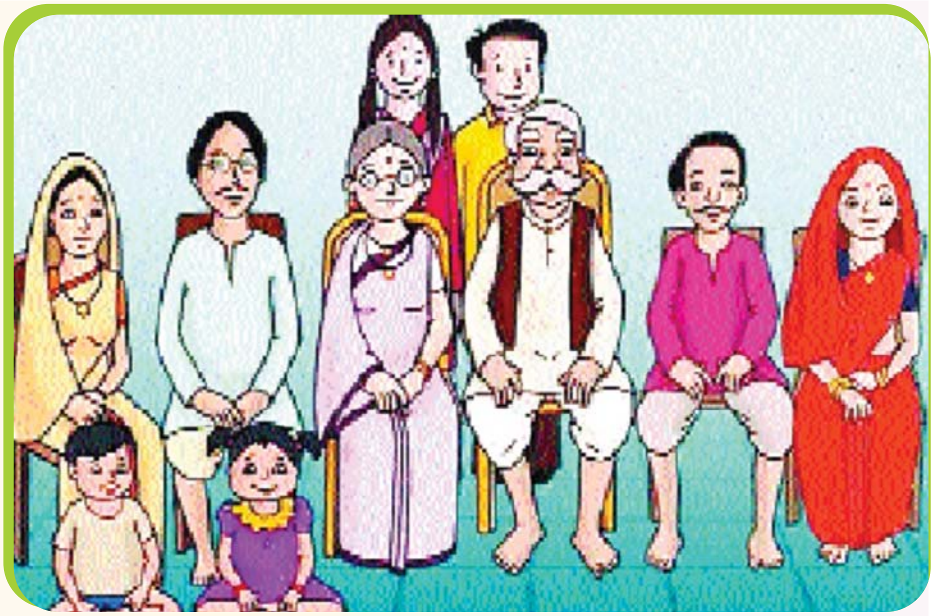

हिन्दी लघुकथा में प्रतिबिंबित पारिवारिक जीवन

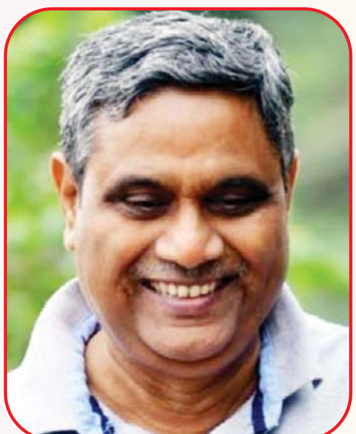

डॉ.शिवजी श्रीवास्तव

परिवार समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है। परिवार के उद्भव एवं विकास के संबंध में विचारकों में मत वैभिन्न्य हो सकता है पर यह निर्विवाद है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में परिवार की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। परिवार ही वह पाठशाला है, जिसमें बच्चा जीवन के प्रारम्भिक पाठ पढ़ता है, जहाँ उसके अंदर संस्कारों का बीजारोपण होता है और संस्कारों के वही बीज आजीवन फलते-फूलते और उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। समाजशास्त्रियों की दृष्टि में विवाह संस्था की उत्पत्ति के मूल में स्त्री-पुरुष के दैहिक संबंध रहे हैं; पर शनैः-शनैः उसके स्वरूप और चरित्र में परिवर्तन होते गए। दैहिक-संबंधों से शुरू हुई यह संस्था स्त्री-पुरुष को परस्पर और स्वयं से उत्पन्न संतति को प्रगाढ़ स्नेह संबंधों में बाँधकर रखने का एक प्रमुख केंद्र तो बनी ही, साथ ही उनके शारीरिक और मानसिक विकास में भी उसकी प्रमुख भूमिका हो गई। सभ्यता के विकास के साथ-साथ परिवार के स्वरूप एवं चरित्र में भी परिवर्तन होता रहा है। कृषि सभ्यता दौर में कुटुंब /संयुक्त परिवार- प्रणाली थी, जिसमें प्रायः एक ही परिवार में जन्मे सभी पुरुष सदस्य और उनके परिवार एक साथ रहते थे। इन परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक रहती थी और सभी के दायित्व बँटे रहते थे। यहीं से परस्पर अनेक रिश्तों का भी जन्म हुआ। प्रत्येक रिश्ते के अलिखित नैतिक दायित्व थे, प्रत्येक परिवार के कुछ मूल्य थे और ये मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आते रहते थे। बचपन में जिन बच्चों का पालन पोषण माँ-बाप करते थे उन्हीं के वृद्ध होने पर उनके पोषण और संरक्षण का दायित्व बेटों का होता था, जिसे वे सहर्ष स्वीकार करते थे। पुरुष कामकाजी होते थे, आर्थिक सत्ता उन्हीं के हाथों में रहती थी, स्त्रियाँ घर के कार्य करती थीं, उनके पोषण का दायित्व पुरुष का होता था।

कृषि सभ्यता के बाद औद्योगिक सभ्यता का आगमन हुआ। इस व्यवस्था में, रोजगार की तलाश में लोगों का ग्रामों से पलायन हुआ और परिवार का परंपरागत ढाँचा छिन्न-भिन्न होने लगा। आर्थिक दबावों ने व्यक्ति को आत्मकेंद्रित बनाना शुरू किया, तो पारिवारिक मूल्यों का क्षरण होने लगा। विकास-क्रम में पूँजीवाद और बाज़ारवाद के विस्तार ने पारिवारिक मूल्यों को तीव्र गति से क्षति पहुँचाई। परिणामतः पारिवारिक संरचना बदलने लगी और पारस्परिक रिश्तों में नए प्रकार के द्वन्द्व और तनाव पनपने लगे। तकनीक ने भी इन रिश्तों को प्रभावित किया और समाज में नए प्रकार के समीकरण बनने लगे। सजग साहित्यकारों ने इस बदलाव को पहचानकर गंभीरता के साथ उन्हें साहित्य में अभिव्यक्त करना प्रारंभ किया। हिन्दी लघुकथा ने भी परिवार में होने वाले इन बदलावों और संबंधों को पहचाना और अंकित किया। हिन्दी का शायद ही कोई लघुकथाकार हो, जिसने पारिवारिक संबंधों, मूल्यों और बदलावों पर नजर न डाली हो और उन्हें अपनी लघुकथा में व्यक्त न किया हो। प्रत्येक लघुकथा का उल्लेख एक संक्षिप्त आलेख में संभव नहीं, किन्तु कुछ लघुकथाओं के परिप्रेक्ष्य में इसे देखा जा सकता है।

परिवार की संरचना दाम्पत्य संबंधों एवं रक्त संबंधों से मिलकर होती है, इनमें पति-पत्नी, बेटे-बहू-बेटी, भाई-बहन के रिश्ते प्रमुख होते हैं। प्रत्येक रिश्ते के महत्त्व और मर्यादाएँ समाज द्वारा निर्धारित हैं। इन रिश्तों के सम्मान एवं सौहार्द हेतु समाज में अनेक पर्व-उत्सव, रीति-रिवाज भी बनाए गए हैं। परिवार में सबसे पवित्र और कोमल रिश्ता भाई-बहन का होता है, ये रिश्ता बहुत पवित्र एवं पूज्य माना जाता है। स्नेह का एक अव्यक्त धागा उन दोनों को आजीवन बाँधे रहता है, अनेक प्रकार की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ उनके स्नेह को जीवंत रखती हैं। विवाह-पूर्व तक मायके में बहनें अपने भाई या भाइयों के निकट होती हैं, उनकी लाड़ली रहती हैं, ससुराल जाने के बाद भी वह तीज-त्योहार, विवाह जैसे समारोहों में रस्मों के नाम पर भाई से कुछ माँगना अपना हक समझती हैं। भाई भी इन रस्मों को पूरा करना अपना कर्तव्य समझते हैं पर बदलाव के इस दौर में जब से कानूनन बेटियों को पिता की संपत्ति में अधिकार मिला तब से इन संबंधों में दरार आने लगी है, दिलों में स्नेह के स्थान पर खटास पनपने लगी है। श्याम सुंदर अग्रवाल की लघुकथा 'रिश्ते' में इस बदलाव से भाई-बहनों के संबंधों में आती तिक्तता को गहराई से व्यक्त किया गया है। 'रिश्ते' की सरिता छोटे से पैतृक मकान में कानूनन अपना हिस्सा अपने भाई से ले चुकी है। भाई की आर्थिक हैसियत बहुत अच्छी नहीं है, अत: वह किराए के मकान में रह रहा है। सरिता अपने भाई के घर बेटी के विवाह हेतु 'भात' माँगने आती है, वह चाहती है कि भैया उसकी प्रतिष्ठा के अनुसार भात लेकर आए, भले ही इस रस्म को निभाने हेतु उसे कर्ज लेना पड़े वह भाई से कहती है- ''भैया सामाजिक रीति रिवाजों का निर्वाह तो करना ही पड़ता है। ऐसे वक्त तो भाई कर्ज लेकर भी अपना और बहन का मान रखता है।'' इस पर भाई तल्खी से कहता है- ''दीदी, पारिवारिक रिश्तों में सरकार और समाज दोनों के कानून एक साथ नहीं चलते। उनमें से एक को ही चुनना होता है। आपने सरकार का कानून चुना; इसलिए समाज के रीति-रिवाज निभाने की दुहाई देने का कोई हक नहीं रह गया आपको।'' ...यह एक कड़वी सच्चाई है। संपत्ति में बेटियों के हक के बाद परिवार में भाई-बहनों के रिश्तों में दूरियाँ बढ़ी हैं, यहाँ गलत- सही का विवेचन करना अभिप्रेत नहीं है ; पर उस सौहार्द में कमी तो आई ही है।

पारिवारिक रिश्तों में कहीं सौहार्द है, कहीं अनबन है, कहीं चिंताएँ हैं और कहीं तनाव हैं। ये चिंताएँ अनेक प्रकार की हैं। इन चिंताओं में बेटी का जन्म होना भी एक बड़ी चिंता का विषय है। दरअसल समाज का ताना-बाना इस प्रकार का है जिसमें बेटियों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है, जन्म से लेकर जीवन-पर्यंत उसे विवध प्रकार के संत्रास से गुजरना पड़ता है ; इसीलिए परिवार में बेटी का होना माता-पिता को नित्य नवीन प्रकार की चिंताओं एवं आशंकाओं से ग्रस्त रखता है। कहने को भले ही बेटे-बेटी में कोई फर्क न हो पर समाज की सोच में बदलाव बहुत धीमी गति से हो रहा है अभी भी कदम-कदम पर बेटियों को तो त्रास सहने ही पड़ते हैं साथ ही अभिभावकों को भी अनेक प्रकार की वेदनाओं में जीवन- यापन करना होता है यहाँ तक कि बेटी का विवाह कर देने पर भी माँ-बाप चिंतामुक्त नहीं रह पाते। बहुधा ससुराल में त्रास भोग रहीं बेटियाँ, अपने कष्ट किसी से कह भी नहीं सकतीं। यहाँ तक कि यदि अपने माता-पिता को वे पत्र लिखें तो वे भी ससुराल में सेंसर किए जाते हैं।

सुकेश साहनी जी की लघुकथा 'बेटी का खत' में एक पिता की इसी वेदना को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है। लघुकथा शुरू ही पिता की चिंता से होती है- 'बेटी का खत पढ़ते ही बूढ़े बाप के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं'... पति का चेहरा देख कर पत्नी को भी चिंता होती है, वह भी बेटी के खत को पढ़ती है। ...खत खैरियत वाला ही था, बेटी ने माँ-बाप की कुशलता की कामना करते हुए अपनी राजी-खुशी लिखी थी। पत्र के अंत में लिखा था- 'राजू भैया की बहुत याद आती है।'। माँ को खत में कुछ असामान्य नहीं लगता। वह दैनिक कार्यों में व्यस्त हो जाती है पर पिता उस खत को हाथ में लिए चिंतित भाव से बैठे रहते हैं, वे पत्नी से कहते है, ''सोचता हूँ, कल रजनी बेटी के घर हो ही आऊँ,...पति की उदासी देखकर पत्नी पूछती है, ''आखिर हुआ क्या है? कल ही तो दशहरे पर बेटी के यहाँ जाने की बात कर रहे थे, फिर अचानक ऐसा क्या हुआ जो, ... वे पति को कसम देती हैं- ''तुम्हें मेरी सौं जो कुछ भी छिपाओ...'' आखिर वे भर्राए स्वर में बतलाते हैं- पिछली बार रजनी ने बतलाया था कि उसके ससुराल वाले उसकी कोई भी चिट्ठी बिना पढ़े पोस्ट नहीं होने देते, तो मैंने कहा था- ''भविष्य में अगर वे लोग तंग करें और वह हमें बुलाना चाहे तो खत में लिख दे राजू भैया की बहुत याद आ रही है, इस बार उसने खत में यही तो लिखा है।''

ससुराल में बेटियों की प्रताड़ना और मायके में माँ-बाप की चिंता, परिवारों की बहुत पुरानी समस्या है यद्यपि बेटियों के शिक्षित और आत्मनिर्भर होने के बाद इस समस्या में कमी तो आई है; पर समाप्त नहीं हुई है,। अभी भी बेटियाँ ससुराल में बहुत कुछ सहती हैं पर लज्जा, मर्यादा या माता-पिता को दु:ख न देने की भावना से जब तक संभव हो अपनी प्रताड़ना को छुपाए रखती हैं, प्राय: माँ- बाप बेटियों के चेहरे से उनके दु:खों का अनुमान कर लेते हैं। भगवान

वैद्य 'प्रखर' की लघुकथा 'दरिंदे' इसी वेदना को अभिव्यक्त करती है। कथा नायिका गौरांगी मायके आई है। स्नेह में भरी माँ, बेटी का सर धोना चाहती है, बेटी उसे टाल रही है, पर माँ मानती नहीं है। गौरांगी के बाल धोते हुए माँ उसके गर्दन और पीठ पर पड़े निशान देखकर चौंकती है और उनके बारे में पूछती है। गौरांगी सच छुपाना चाहती है, पहले माँ की दृष्टि गर्दन के निशान पर पड़ती है, वह चौंककर पूछती है, ''अरी ये इत्ता बड़ा निशान काहे का है यहाँ?'' बेटी टाल देती है–घर के पिछवाड़े आँधी में पेड़ गिर गया था। उसका लक्कड़ उठा लाई थी, उसी का निशान होगा। माँ को विश्वास नहीं होता।'' ये इत्ता बड़ा निशान लक्कड़ का नहीं हो सकता....ये निशान कुछ और ही कह रहा है..अरी दइया ये तो पूरी पीठ ही हरी–नीली पड़ गई है..'' बहुत कुरेदने पर बेटी के मुख से सच बाहर आता है–''गर्मियों में एक बैल मर गया था। सास–ससुर और तुम्हारे दामाद पीछे पड़ गए कि मायके जाकर बैल खरीदने के लिए पैसे लेकर आओ। रोज मारपीट करते। .. तुम लोगों के हालात तो मैं जानती थी। उन्हें बताया; पर वे सुनने को तैयार न थे। दरिंदगी पर उतर आए। चार–चार दिन भूखा –प्यासा कमरे में बंद रखा.. क्रूरता यहीं खत्म नहीं हुई अंततः बेटी बैल के स्थान पर स्वयं जुती .. ''और ये निशान?'' पूछने पर उत्तर मिला –''हल जोतते व्यक्त वह नशे में भूल जाते थे कि हल में बैल नहीं, मैं जुती हूँ।'' यह क्रूरता कि पराकाष्ठा है, सुनने में बात अतिशयोक्तिपूर्ण लगती है पर सच्चाई यही है कि अभी भी अनेक बेटियों को ससुराल में इससे अधिक प्रताड़ना सहती पड़ती हैं पर अपनी पीड़ा किसी से व्यक्त नहीं कर पातीं।

बेटियों के जीवन की समस्याएँ कई प्रकार की होती हैं। कभी–कभी उन्हें पारिवारिक व्यभिचार का भी शिकार होना पड़ता है। बहुत नजदीकी रिश्ते भी ऐसा छल करते हैं, जो बेटियों के मन पर न मिटने वाला दाग छोड़ जाते हैं। 'फटी चुन्नी'(सत्या शर्मा 'कीर्ति') की सीमा ऐसी ही लड़की है, जो 14 वर्ष की अवस्था में अपने पिता–तुल्य फूफा द्वारा ही दैहिक शोषण का शिकार हुई है ; पर बुआ की गृहस्थी की चिंता के कारण किसी से बताती भी नहीं है। समाज की सोच कुछ इस प्रकार निर्मित हुई है कि बेटियों का जन्म एक अभिशाप की तरह देखा जाता है, बेटी को जन्म देने वाली माँ को परिवार में ही हिकारत की दृष्टि से देखा जाता है और उसे लगातार ताने सुनने को मिलते हैं। एक बड़ा अंतर्विरोध यह भी है कि घर के बाहर तो वे बेटी के जन्म को सौभाग्य बतलाते हैं, पर घर में बेटी को जन्म देने वाली माँ को तिरस्कृत करते हैं।

डॉ.कविता भट्ट 'शैलपुत्री' की लघुकथा 'सिसकी' इस आडम्बर को बड़ी गहराई से उभारती है। पाँचवीं बेटी को जन्म देने वाली कमला को उसकी सास हिकारत की दृष्टि से देखती हुई ताना देती है, ''तूने कौन– सा गुल खिलाया है, महारानी? यह भूसे का डला, वह भी पाँचवीं बार। अब तक एक पोते को तरस गई।'वहीं पास ही बैठा कमला का पति, जिसने बच्ची को अभी तक भी गोदी में नहीं लिया था; बच्ची के फोटो क्लिक करके फेसबुक पर अपलोड कर रहा था; वॉल पर लिख रहा था; 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ।' फेसबुक पर फ़ोटो पोस्ट करके वह उठकर बाहर चला गया। .....लघुकथा यहीं समाप्त नहीं होती, कमला के पास वाले बेड पर भर्ती शांति का छठी बार गर्भपात हुआ है, विवाह के पंद्रह वर्षों बाद भी वह माँ नहीं बन पा रही है...ठीक उसी समय जब कमला को बेटी होने पर लानत दी जा रही थी, शांति अपने पास ही पालने में लेटी बच्ची को तरसती हुई नज़रों से देखकर सिसक –सिसककर रोने लगती है....काश उसके ऐसी बच्ची होती!!....इस अंतर्विरोध ने मातृत्त्व की संवेदना तथा बेटी की उपेक्षा और महत्ता को अधिक सघनता से उभार दिया है।

जहाँ समाज में बेटी को अभिशाप की तरह देखा जा रहा है वहीं कुछ सकारात्मक सोच के प्रगतिशील लोग भी हैं, जो इन रूढ़ियों को तोड़ते हुए बेटी के जन्म को भी उत्सव की तरह लेते हैं और अपने उल्लास और आनंद की अभिव्यक्ति भी करते हैं, यद्यपि ऐसी सकारात्मक सोच वाले लोग अभी कम ही हैं; पर यह मनोवृत्ति सामाजिक बदलाव का संकेत तो देती ही है। रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' की लघुकथा 'नवजन्मा' इसी सकारात्मक भाव–बोध की सुंदर लघुकथा है। 'नवजन्मा' के जिलेसिंह को बेटी होने पर दादी सचेत करती है–''जिल्ले! तेरा तो इभी से सिर बँध ग्या रे छोरी हुई है!'' बहन फूलमती मुँह बनाकर कहती है–''भाई लड़का होता तो ज्यादा नेग मिलता। मेरा भी नेग मारा गया.. पहला जापा था सोचा था खूब मिलेगा।'' घर वालों के तानों से जिलेसिंह के माथे पर कुछ क्षण के लिए चिंता की रेखाएँ उभरती हैं; पर वह तत्काल इनसे मुक्त होकर घर से बाहर निकल जाता है और अपने साथ ढोल बजाने वाले को लेकर लौटता है। ढोल वाले को ढोल बजाने का आदेश देकर जिलेसिंह अलमारी से अपनी वह तुर्रेदार पगड़ी निकालकर बाँधता है, जिसे वह शादी–ब्याह या वैशाखी जैसे मौकों पर ही बाँधता था, उस पगड़ी को बाँधकर ढोल की गिड़गिडी पर वह पूरे जोश से आँगन में नाचता है और सौ का नोट नवजात के ऊपर न्योछावर करके ढोलिया को थमा देता है। बेटी के जन्म को भी उत्सव की तरह लेने की मनोदशा की यह अत्यंत सुंदर, सकारात्मक और प्रेरक लघुकथा है।

भारतीय परिवारों में वृद्धों की अलग प्रकार की समस्याएँ हैं। प्रायः वे उपेक्षा और अकेलेपन

की व्यथा से जूझते हैं। यद्यपि भारतीय संस्कृति– 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' की पोषक है। यहाँ वृद्धजनों को परिवार का वट वृक्ष माना जाता है, जिनकी घनी और शीतल छाँव परिजनों को निश्चिंतता एवं संरक्षण प्रदान करती है, पर ये विडंबना ही कही जाएगी कि एकल होते परिवारों में यह भावना तिरोहित हो रही है। अनेक परिवारों में बुजुर्गो को समुचित सम्मान नहीं मिलता। वे उपेक्षित रहकर एकाकीपन के दंश झेलने को अभिशप्त रहते हैं। वृद्धों की इस स्थिति और मनोदशा को अनेक लघुकथाओं में देखा जा सकता है।

डॉ.छवि निगम की लघुकथा 'फाँक' में वृद्धा माँ बेटे–बहू द्वारा उपेक्षित है, बेटा घर में आम लेकर आया है; पर बहू उसे आम की एक फाँक तक खाने को नहीं देती है। बहू द्वारा वृद्धा की उपेक्षा संवेदना को और सघन बनाते हुए लेखिका वृद्धा को उसके उस अतीत में ले जाती हैं, जहाँ उसे भी अपनी सास से इसी प्रकार का व्यवहार करते दिखाया गया है– ''बरामदा पार करते हुए अचानक उनकी नज़र कोने में पड़ी कबाड़ से ढकी...बेंत की आरामकुर्सी पर पड़ी, तो वे ठिठक गईं। सुन्न होते शरीर से...बस उसे देखती ही रह गईं। फिर घिसटते कदमों से वे लौट पड़ीं। अब उन आँखों में नमी तैर रही थी, और यादों में एक धीमी घिघियाती आवाज़–''ज़रा–सा दे दो बहूरानी...बस एक फाँक..'' अर्थात् उपेक्षा की यह प्रवृत्ति नई नहीं है।

प्रियंका गुप्ता की 'भूकंप' में अचानक आए भूकंप में पत्नी द्वारा हड़बड़ी में घर से बाहर खींच कर ले गए पति को याद आता है– बुजुर्ग और अपाहिज पिता तो घर में ही रह गए। वह अंदर जाने लगता है, तभी अचानक विचार आता है कि बाऊजी की जिंदगी की अहमियत ही अब कितनी है, उनकी सेवा करके वैसे ही थक चुका है। यदि भूकंप में ही उन्हें कुछ हो जाए, तो उसके सिर कोई इल्जाम भी नहीं आएगा। तभी उसकी पत्नी चीखती है, हड़बड़ी में उनका दुधमुँहा बच्चा पालने में ही रह गया है..वे अंदर की ओर भागते हैं, तभी यह देखकर स्तब्ध रह जाते हैं कि एक हाथ से व्हील चेयर चलाते बाहर आ चुके पिता की गोद में उनका दुधमुँहा लाल था। यह

लघुकथा, जहाँ बेटे द्वारा पिता की उपेक्षा की बात करती है, उसी के समानांतर वृद्ध और अपाहिज पिता की संवेदना भी सामने लाती है।

अकेलेपन से जूझना आज के वृद्धजनों की बड़ी समस्या है, सरोज परमार की 'मानुस–गंध' इस समस्या को अत्यंत तीक्ष्णता से उभारती है। घर में अकेली रहती एक वृद्धा मानुष–गंध तक को तरसती है। उसकी जरूरत के सामान की व्यवस्था तो महीने में एक दिन कोई रिश्तेदार आकर कर जाता है; पर शेष दिन उसे अकेले ही व्यतीत करने पड़ते हैं। वृद्धा किसी से बोलने–बात करने को तरसती रहती है। एक दिन अचानक एक लुटेरा, उसे लूटने के उद्देश्य से घर में घुस आता है। कमजोर दृष्टि वाली वृद्धा उसे पहचान तो नहीं पाती; पर लुटेरे के आने से अचानक घर में घुलने वाली मानुष–गंध उसके हृदय को प्रसन्नता से भर देती है। वृद्धा के चेहरे पर फैली स्वागत की मुस्कान, लुटेरे को भी स्तंभित कर देती है। लेखिका ने वृद्धा की इस संवेदना को बहुत गहराई से व्यक्त किया है– 'आँखें कमज़ोर सही, पर उस झुटपुट अँधेरे में गौर से देखा, तो नज़र आ ही गया। सचमुच में एक जीता जागता इंसान! बरबस ही उनके चेहरे पर कर्णचुम्बी मुस्कुराहट फैल गई। भय, आतंक, निरीहता देखने के आदी लुटेरे की विमूढ़ दृष्टि देख रही थी–कभी अपने हाथ के हथियार को और कभी उस अजनबी चेहरे की स्वागतपूर्ण हार्दिक मुस्कुराहट को।'

सोशल मीडिया ने एक नई संस्कृति को जन्म दिया है, जिसमें रिश्ते यथार्थ में कम, सोशल मीडिया पर ज्यादा निभाए जा रहे हैं। डॉ. सुषमा गुप्ता की लघुकथा 'संवेदनाओं के डिजिटल संस्करण' इसी प्रकार की लघुकथा है। यह कथा, स्तब्ध करती है। परिवार में वृद्धों की उपेक्षा करने वाला व्यक्ति, सोशल मीडिया पर अपनी आदर्शवादी छवि स्वयं ही निर्मित कर रहा है। हॉस्पिटल में एडमिट बीमार पिता की सेवा करने से अधिक दिखाने का भाव बेटे के अंदर है। वह बीमार पिता की फोटो और अपना उदास चेहरा सोशल मीडिया पर पोस्ट करता रहता है। पिता की मृत्यु हो जाने पर उनके दाह– संस्कार और त्रयोदशी भोज के चित्र पोस्ट करके लोगों के लाइक्स और कमेंट बटोरकर एक आदर्शवादी बेटे की छवि निर्मित करता है, वहीं बीमार बूढ़ी माँ जब दवा लाने को कहती है, तो उपेक्षा से उसे झिड़क देता है और सोशल मीडिया पर ''पाँच मिनट में नया

स्टेटस अपडेट हुआ...पिताजी के बाद अब माँ की तबियत बिगड़ने लगी है। हे ईश्वर अब मुझ पर रहम करो! मुझमें अब और खोने की शक्ति नहीं बची है।''

नई पीढ़ी भले ही बुजुर्गों की उपेक्षा करे, उन्हें स्वार्थी समझे; पर पुरानी पीढ़ी के बुजुर्ग अब भी बच्चों की उसी भाँति चिंता करते हैं, जैसे बचपन में करते थे। रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' की चर्चित लघुकथा 'ऊँचाई' इसी संवेदना को व्यक्त करने वाली प्रभावी लघुकथा है। पारिवारिक रिश्तों और पिता के संवेदनशील चरित्र को इस लघुकथा में बहुत सूक्ष्मता से उभारा गया है। यह लघुकथा अधिकतर मध्यवर्गीय परिवारों की कथा है। शहर में रह रहे बेटे के घर, गाँव से पिता आए हैं। उन्हें देखते ही बेटे की पत्नी तमतमाकर पति से कहती है- ''लगता है बूढ़े को पैसों की जरूरत आ पड़ी है, वर्ना यहाँ कौन आने वाला था।'' बेटे के अंदर भी आशंकाएँ जन्म लेती हैं। घर में बोझिल चुप्पी पसर जाती है। इन्ही आशंकाओं के बीच वह पिता को खाना खिलाता है। खाना खा चुकने पर पिताजी उसे पास बैठने का इशारा करते हैं, तो उसकी शंका और बढ़ जाती है कि पिता जरूर कोई आर्थिक समस्या लेकर आए होंगे। प्राय: मध्य वर्ग के परिवारों में ऐसी ही आशंकाएँ पनपती रहती हैं, पर यहाँ पिता पैसे नहीं माँगते; अपितु बेटे के हाथ में सौ-सौ के दस नोट यह कहते हुए रख देते हैं कि...''रख लो तुम्हारे काम आएँगे धान की फसल अच्छी हो गई थी....ढंग से खाया पिया करो, बहू का भी ध्यान रखो। ''- इस एक वाक्य से बेटा पिघल जाता है। वह संकोच से भर उठता है, तो पिता कहते हैं- ''रख लो, बहुत बड़े हो गए हो क्या''- इस एक संवाद से पिता उन ऊँचाइयों पर पहुँच जाते हैं, जहाँ तक बेटे की दृष्टि नहीं पहुँच सकती।

नई पीढ़ी सदैव वृद्धों की उपेक्षा ही नहीं करती। आज भी माता-पिता को यथोचित सम्मान देने वाली संतानें भी हैं। श्याम सुंदर अग्रवाल की लघुकथा-'माँ का कमरा' ऐसे ही आदर्श बेटे का चरित्र व्यक्त करती है। गाँव से आई उसकी माँ बेटे के घर में आने से पूर्व अनेक आशंकाओं से घिरी है; पर जब बेटा उसे सुख सुविधा सम्पन्न कमरे में रुकने को कहता है, तो उसकी सारी आशंकाएँ निर्मूल सिद्ध हो जाती हैं। अश्विनी कुमार आलोक की 'तीर्थयात्रा' भी इसी भाव-बोध की लघुकथा है। यह लघुकथा एक साथ अनेक अर्थ खोलती है। एक सम्पन्न बेटा अपने से कम आर्थिक हैसियत वाले बड़े भाई को अपने माता-पिता की दृष्टि में हेय सिद्ध करने हेतु, उन्हें तीर्थयात्रा का टिकट बुक करा देता है। जब वे तीर्थयात्रा पर जाने लगते हैं, तो बड़ी बहू उन्हें कुछ देना चाहती है। पास में केवल सौ रुपये ही हैं। बेटा अपनी पत्नी को झिड़कता है-''इतनी बड़ी यात्रा में सौ रुपल्ली ढेले की तरह हैं।'' पर बहू कहती है-''माँ बाबूजी की तीर्थ यात्रा में भले ही इसका कोई मोल न हो पर हमारी तृप्ति तो हो जाएगी।'' बहू की यह भावना महत्त्वपूर्ण है, यही बात उसकी सास सुन लेती है और वह तीर्थ यात्रा का कार्यक्रम रद्द करके पति से कहती है-''मेरा कहा मानो, असल तीर्थ तो इस घर में है।''

महेश शर्मा की लघुकथा 'जायका' में भी एक साथ कई चित्र समाहित हैं, नई पीढ़ी के समृद्ध और समर्थ कामकाजी दम्पती और उनकी पारिवारिक संस्कृति के साथ ही निम्न मध्यवर्ग की संस्कृति और पुरानी पीढ़ी की माँ के खाने के स्वाद के चित्र एक साथ हैं। वर्तमान व्यवस्था ने परम्परागत परिवार व्यवस्था को छिन्न- भिन्न किया है। परिवार एकल तो हुए ही हैं, साथ ही पति- पत्नी दोनों ही कामकाजी भी हो गए हैं। दोनों को नौकरी के लिए घर से बाहर निकलना पड़ता है। ऐसे में घरों में बनाने वाले भोजन या व्यंजनों का चलन लुप्त हुआ है। उसके स्थान पर बाजार के भोजन ने घर में प्रवेश कर लिया है। जायका के दम्पती कार्य से घर लौट रहे हैं। पत्नी बच्चों को फोन करती है..आज डिनर में क्या खाना है...बच्चों की फरमाइश शुरू हो जाती है..मम्मा आज पनीर बटर मसाला, नहीं... नहीं मेरे लिए तो मेथी मलाई मटर और स्टप्ड पराठा, नो माम, मुझे स्टिर फ्राई ब्रोकली खाना है....और मम्मी बच्चों की फरमाइश सुनकर फोन पर किसी एप पर ऑर्डर देने लगती हैं। इस लघुकथा को यहाँ अल्प विराम देकर परंपरागत परिवार व्यवस्था को स्मरण किया जाए...जब घर पर बच्चों को भूख लगती थी, तो उनकी फरमाइश पर माँ किचन में जाकर उनके लिए व्यंजन बनाती थी। तब बाजार नहीं था, ये फास्ट फूड नहीं थे और ऑनलाइन शापिंग 'एप' भी नहीं थे। आज बाजार ने परिवार की उस व्यवस्था को नियंत्रित करके अपने हाथों में ले लिया है। बच्चों के स्वाद और पसंद की प्राथमिकताएँ भी बदल गई हैं। माँ के हाथों के स्नेह-पगे स्वाद से बच्चे वंचित हो रहे हैं। उसका स्थान बाजार के भोजन ने ले लिया है, पर कथा इतनी ही नहीं है, ... कथा आगे बढ़ती है, पत्नी 'एप' पर खाने का आर्डर बुक कर रही है और कार ड्राइव कर रहे पति कह रहे हैं कि मेरे फोन में एक नया 'एप' है उससे ऑर्डर करो, वह अच्छा खाना देता है, तुम्हारे वाले 'एप' से आया भोजन डिलीवरी बॉय जूठा कर देते हैं...पता नहीं बच्चे किस-किस का जूठन खाते हैं, इस बात पर पति-पत्नी में नोंक-झोंक होती है....ये परिवारों के लिए नया संकट है.....पत्नी अपने ही 'एप' से आर्डर करती है, डिलीवरी बॉय घर के बाहर ही मिल जाता है, उसका पैकेट थोड़ा खुला है, पत्नी को लगता है कि इसने भोजन चुराकर खा लिया होगा, वह डिलीवरी बॉय को डाँटते हुए भोजन के पैकेट वहीं फेंक देती है और पति अपने मोबाइल से नए वाले 'एप' पर ऑर्डर देने लगता है, तभी डरा- सहमा डिलीवरी बॉय कहता है- ''साब, हम यह सब खाना नहीं खाते। भगवान की कसम

साब, हम तो अपनी अम्मा के हाथ का बना खाना ही...'' अचानक आर्डर देते पति की उँगलियाँ ठिठक गईं...लघुकथा का यह चरमोत्कर्ष यह अंत, सहृदय पाठक को स्तब्ध कर देता है और अचानक ही माँ के हाथों के खाने का स्वाद मुँह में घुलने लगता है।

परिवार ही वह संस्था है, जिसके अंदर बच्चों के अंदर शुभ संस्कारों का बीजारोपण होता है। परिवार, बच्चों को धैर्य, सहनशीलता और रिश्तों का सम्मान करना सिखाते हैं। वर्तमान में संयुक्त परिवार तीव्र गति से टूट रहे हैं बिखर रहे हैं। अनेक युवाओं को प्रतीत होता है कि गाँवों में बच्चों का सही विकास नहीं हो पाएगा। वे बच्चों को लेकर घर छोड़कर चले जाते हैं। बाद में उन्हें अपने निर्णय पर पछतावा होता है। विरेंद्र 'वीर' मेहता की 'दिन अभी ढला नहीं' इसी विषय की लघुकथा है। उमाशंकर और उनकी पत्नी सुधा अपने गाँव लौट रहे हैं। वर्षो पूर्व वे संयुक्त परिवार छोड़कर गाँव से इसलिए चले गए थे; क्योंकि वे गाँव के अनपढ़-देहाती माहौल से बच्चों को दूर रखना चाहते थे। उन्होंने बच्चों को विदेश ले जाकर उन्हें हर प्रकार से सफल व्यक्ति तो बना दिया, पर उचित संस्कार नहीं दे पाए। वर्षो बाद इसी पछतावे के साथ वे गाँव लौटते हैं। उन्हें वर्षो बाद ये समझ में आता है कि 'संस्कार तो प्रकृति के वे बीज होते हैं जो परिवार के बुजुर्गों और अपनों के सान्निध्य, प्रेम में ही पैदा होते हैं।'

दाम्पत्य-संबंधों पर भी लघुकथाकारों ने काफी लिखा है। वस्तुत: पति-पत्नी संबंध ही परिवार का मूल आधार है, स्त्री-पुरुष संबंधों ने ही परिवार को जन्म दिया बाद में ये संबंध प्रगाढ़ होते गए। परंपरागत रूप से परिवार में दोनों के अपने अधिकार हैं, अपने कर्तव्य हैं; पर इनसे इतर दोनों की आपसी समझ से ही परिवार चलते हैं। पति-पत्नी में परस्पर नोंक-झोंक और सौहार्द भारतीय परिवारों का स्थायी भाव जैसा है, शायद ही कोई ऐसा परिवार हो, जहाँ पति-पत्नी में नों कझोंक न होती हो। संतोष सुपेकर की लघुकथा 'आर्द्रता' इस भाव को व्यक्त करने वाली बहुत सुंदर लघुकथा है। एक छोटे से स्टेशन पर रुकने वाली ट्रेन के कुछ यात्री अपनी-अपनी जरूरतों के लिए प्लेटफार्म पर उतर आते हैं, बारिश की संभावना है, अचानक यात्रियों की दृष्टि दूर से ट्रेन की ओर आते एक झगड़ा करते दम्पती पर पड़ती है। छोटी- सी बंद छतरी हाथ में लेकर आता हुआ पति, अपनी पत्नी को बुरी तरह डाँट रहा था- ''तू समझती क्या है, अपने आपको ? पहले तेरे भाई ने मेरा मजाक उड़ाया तब तूने उसका साथ दिया। अभी परसों तेरी भाभी ने मेरी इंसल्ट की, तब भी तू चुप रही। ध्यान रखना, मैं उसकी भी अक्ल ठिकाने लगा दूँगा और तेरी भी..''-उसका बढ़ता हुआ गुस्सा देखकर लोगों को लग रहा था कि वह अभी अपनी औरत को पीटने लगेगा। औरत जार-जार रोती हुई उसके साथ चल रही थी .. तभी जोरदार बारिश शुरू हो जाती है। यात्री भागकर अपने-अपने कोच में आ जाते हैं, सब उत्सुकतावश बाहर उस दम्पती को देखते हैं, तो दंग रह जाते हैं; 'बारिश चालू होते ही लड़ते-झगड़ते, औरत को मारने पर उतारू उस आदमी ने छतरी खोलकर औरत के सिर पर तान दी थी और खुद पूरी तरह भीगता हुआ, उसके साथ चल रहा था। हालाँकि उसका डाँटना- फटकारना एवं औरत का रोना-धोना अब भी जारी था।'' यही भारतीय परिवारों में पति-पत्नी के रिश्तों का स्वरूप है, जहाँ एक दूसरे की चिंता और गुस्सा साथ-साथ चलते हैं। दाम्पत्य संबंधों की एक विशेषता यह भी है कि दोनों एक दूसरे के मन को पढ़ना जानते हैं।

'बेटी का खत' (सुकेश साहनी) का पति अपनी पत्नी को सच्चाई नहीं बताना चाहता; पर पत्नी उसके मनोभावों को पढ़ लेती है और उसे अपनी सौगंध देकर सत्य जान लेती है। कमलेश भारतीय की 'कुछ खास नहीं' भी इसी भाव को व्यक्त करने वाली लघुकथा है। वृद्ध दम्पती के जीवन की इस कथा में पति दाँत- दर्द से पीड़ित है और पत्नी पीठ दर्द से। दोनों घर पर अकेले हैं। सारा दिन दर्द सहते हैं, शाम को बेटी घर आती है, तो पत्नी पति की दवा लेने बाजार जाने लगती है। पति याद दिलाता है कि अपनी दवा भी ले आना, पर पत्नी केवल पति की ही दवा लाती है, अपनी नहीं। पति द्वारा कारण पूछने पर कह देती है कि उसे कुछ खास दर्द नहीं है। .. इस लघुकथा में एक साथ कई बिम्ब मिले हुए हैं। आर्थिक अभाव भी है, पति के दर्द के आगे अपने दर्द को गौण समझने की पत्नी की वृत्ति भी है, पति की पत्नी के लिए भी चिंता है..यही परिवार में पति-पत्नी के संबंधों का यथार्थ है। पति के लिए पत्नी त्याग करती है। भारतीय परिवारों में स्त्री के लिए पति का होना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है; इसीलिए घनश्याम अग्रवाल की लघुकथा 'औरत का गहना' की नूरा अपने पति इदरीस के इलाज के लिए पति द्वारा दी गई प्रेम की निशानी-अपना एक मात्र गहना, उँगली का छल्ला बेच देती है। पति के पूछने पर कह देती है कि हया ही औरत का असली गहना है। विडंबना यह है कि उसे नूरा को बाद में बच्चे के इलाज के लिए अपनी हया का गहना बेचना पड़ता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि परिवार अत्यंत प्राचीन एवं शक्तिशाली संस्था है, व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में उसकी प्रभावी भूमिका है। समय के साथ इस संस्था में कुछ विसंगतियाँ पनपना, कुछ दुर्बलताएँ आना स्वाभाविक है; पर उनकी तुलना में उसकी अच्छाइयाँ प्रबल हैं। जीवन की आपाधापी में हर हारे-थके व्यक्ति को अंतत: परिवार में ही शांति मिलती है, रिश्तों से ही संबल मिलता है। हिन्दी लघुकथाकार अपनी लघुकथाओं में पारिवारिक जीवन के ये प्रतिबिम्ब उसकी समग्रता में पूर्ण प्रामाणिकता के साथ चित्रित कर रहे हैं। ■

डॉ. कुँवर दिनेश सिंह

हिन्दी लघुकथा : शिल्प एवं सम्प्रेषण-कला

हिंदी साहित्य में लघुकथा को विगत कुछ दशकों में एक सशक्त साहित्यिक विधा के रूप में विकसित किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान समय में लघुकथा साहित्य में रुचि रखने वाले सामान्य पाठकों की संख्या बहुत बढ़ी है। इसी कारण से आजकल लघुकथाओं की अनेक पुस्तकें बाज़ार में बाढ़-सी ला रही हैं। हिन्दी साहित्य की लघुकथा, कहानी अथवा कथा की अन्य विधाओं से भिन्न है। लघुकथा किसी विशेष क्षण अथवा घटना से सम्बन्धित जीवनानुभव अथवा विचार को समाहित किए रहती है। संरचनात्मक रूप से, एक लघुकथा में आरम्भ, मध्य, और अंत सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं। इसमें कहानी के आवश्यक तत्व भी रहते हैं। कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद, और उद्देश्य, एक कहानी के समान ही लघुकथा में भी देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यह एक संदेश अथवा नैतिक शिक्षा को विचारोत्तेजक रूप से संप्रेषित करती है।

लघुकथा प्राय: नित्यप्रति के जीवन के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों से भी जुड़ी होती है। इसमें जीवन मूल्यों का निरूपण रहता है। कभी-कभी हास्य या व्यंग्य के तत्त्व भी विद्यमान रहते हैं ; लेकिन यह आमतौर पर उद्देश्यपूर्ण होता है, और पाठक के मन-मस्तिष्क पर इसका समग्र प्रभाव अत्यन्त गंभीर होता है। अपनी संक्षिप्तता और सूक्ष्मता में, लघुकथा जीवन की जटिलताओं का वर्णन करती है, जीवन के बारे में बहुत कुछ कहती है। सूक्ष्मता से तराशी हुई, लघुकथा जीवन के अनुभवों से उपजी विडम्बनाओं और विसंगतियों को कलात्मक ढंग से कहती है। हर घटना, समाचार या गपशप लघुकथा का रूप नहीं ले सकती; जीवन के अनुभवों को एक लघुकथाकार अपने रचनात्मक कौशल से आसवित करने का प्रयास करता है। जहाँ तक लघुकथाओं की विषय-वस्तु का प्रश्न है, उसमें कोई प्रतिबंध या किसी भी प्रकार की सीमा नहीं है। हालाँकि, विषय का चयन कलात्मक अभिव्यक्ति के अनुरूप होता है, यह वास्तव में एक कठिन कार्य है। समकालीन लघुकथा में इसके आकार की सूक्ष्मता और इसका विचारोत्तेजक स्वरूप इसकी अपनी विशिष्ट पहचान हैं।

संचार की एक अद्वितीय कला के रूप में हिंदी लघुकथा एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा है। लघुकथा, कहानी कहने का एक लोकप्रिय रूप है, जो मनोरंजन, शिक्षा और सांस्कृतिक संरक्षण के साधन के रूप में कार्य करती है। लघुकथा में अर्थ बताने, भावनाओं को जगाने और दर्शकों को संलग्न करने के लिए भाषा, प्रतीक, और कहानी कहने की तकनीकों का कुशल प्रयोग शामिल है। लघुकथा का ऐतिहासिक संदर्भ प्राचीन भारत में खोजा जा सकता है, जहाँ मौखिक कहानी कहने की परंपराएँ प्रचलित थीं। समय के साथ, इन कहानियों को लिखित रूप में दर्ज किया गया, जिससे हिंदी साहित्य की एक समृद्ध परंपरा का उदय हुआ। हिंदी लघुकथा लोगों के समाज, संस्कृति और मूल्यों के प्रतिबिंब के रूप में कार्य करती है। लघुकथा अक्सर मानवीय सम्बन्ध, प्रेम, विश्वासघात, न्याय, नैतिकता, राजनीति, परिवार, और विभिन्न सामाजिक सरोकार जैसे विषयों पर केन्द्रित रहती है, जिससे पाठकों को मानव स्वभाव और जीवन की जटिलताओं के बारे में उपयोगी जानकारी मिलती है।

भावनात्मक जुड़ाव के अलावा, लघुकथा में सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भों की गहरी समझ की भी आवश्यकता होती है। लघुकथाओं में सांस्कृतिक संदर्भों, मुहावरों और प्रतीकों का प्रयोग करके, लघुकथाकार अपने पाठकों के साथ साझा अनुभव और समझ की भावना को भी सशक्त बना सकते हैं। लघुकथा में प्रभावी सम्प्रेषण का एक अन्य आवश्यक तत्व संवेदी भाषा और ज्वलंत कल्पना का प्रयोग है। हिंदी लघुकथा के शिल्प को पौराणिक और सांस्कृतिक संदर्भों जैसे पारंपरिक तत्वों के समावेश से और निखारा जा सकता है। हिंदी लघुकथा की जड़ें प्राचीन भारतीय कहानी कहने की परंपराओं में हैं, जहाँ मौखिक कथाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित की जाती थीं। इन लघुकथाओं का उपयोग अक्सर नैतिक शिक्षा देने, दर्शकों का मनोरंजन करने और सांस्कृतिक मूल्यों को साझा करने के लिए किया जाता था। समय के साथ, कहानी कहने की कला विकसित हुई और हिंदी लघुकथा संचार के एक विशिष्ट रूप के रूप में उभरी। आधुनिक युग में इस संचार तकनीक को साहित्य, फिल्म, टेलीविजन और डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे विभिन्न माध्यमों से नया जीवन मिला है।

लघुकथाएँ लोगों की आशाओं, सपनों और संघर्षों को दर्शाते हुए समाज के लिए एक दर्पण का कार्य करती हैं। उनमें नए विचार को उत्तेजित करने, शक्तिशाली भावना एवं सहानुभूति जगाने और सामाजिक परिवर्तन लाने की शक्ति है। जैसे-जैसे हिंदी लघुकथा विकसित हो रही है और आधुनिक समय के अनुरूप ढल रही है, इसके शिल्प में भी नवाचार देखने की मिल रहे हैं। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म और कहानी कहने के नए रूपों के उदय के साथ, लेखक पाठकों को नवीन तरीकों से संलग्न करने के लिए विभिन्न

कथा संरचनाओं और बनावट के साथ प्रयोग कर सकते हैं।

हिंदी लघुकथा रचनात्मक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और बौद्धिक उत्तेजना के लिए एक मंच प्रदान करती है। इन लघुकथाओं के माध्यम से, लेखक जटिल विषयों का पता लगा सकते हैं, विविध पाठकों के साथ जुड़ सकते हैं, और मानवता- विरोधी सामाजिक मानदंडों को चुनौती दे सकते हैं, तथा संवाद के लिए जगह बना सकते हैं। लघुकथा में सामाजिक परिवर्तन और व्यक्तिगत परिवर्तन के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करते हुए, प्रेरित करने, शिक्षित करने और मनोरंजन करने की अद्भुत् शक्ति है। लघुकथा में प्रभावी सम्प्रेषण की कला देखी जा सकती है, जिसके लिए भाषा, मनोविज्ञान और सांस्कृतिक बारीकियों की गहरी समझ की आवश्यकता होती है। लघुकथा में न केवल शब्दों का चयन और वाक्यों की संरचना प्रभावी होती है, बल्कि पाठकों के मन में भावनाओं एवं विचारों को जगाने और ज्वलंत मानसिक छवियाँ बनाने की क्षमता भी प्रबल होती है।

प्रस्तुत लेख कुछ शक्तिशाली और तकनीकी रूप से सुदृढ़ लघुकथाओं को उनकी संरचना, बनावट और संप्रेषणीय कला के बारे में चर्चा में ले जाता है। उदाहरणों में इस शैली के स्थापित और नए दोनों लेखक शामिल हैं। चयनित लघुकथाओं का उनकी शिल्पगत विशेषताओं के लिए विश्लेषण किया गया है। इन लघुकथाओं में कुछ विशिष्ट संरचनात्मक तत्व हैं, जिनमें प्रमुख हैं ? कहानी का आरम्भ, पात्रों का परिचय, कथ्य एवं मुख्य विषय की प्रस्तुति, कथानक का विकास, और कहानी का चरमोत्कर्ष, निष्कर्ष और संदेश। प्रतिदिन हम समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों और संकलनों में लघुकथाओं की विविधता देखते हैं, जो विभिन्न रूपों और शैलियों में सामने आती हैं, और कहानी कहने की इस विधा में रुचि रखने वाले पाठकों की अपेक्षाओं को पूरा करती हैं। हालाँकि, नित्य प्रकाशित हो रही बहुत-सी लघुकथाओं में से कुछ ही रचनाएँ ऐसी हैं, जो इस विधा के मानकों पर खरी उतरती हैं। अधिकतर, ऐसी रचनाएँ होती हैं, जो पत्रकारिता के प्रारूप में कुछ घटनाओं का वर्णन-मात्र प्रस्तुत करती हैं, बिना यह जाने कि लघुकथा अनेक बारीकियों के साथ कथा कहने की एक अत्यधिक गूढ़ विधा है। इस विधा के लिए तकनीकी कौशल और अभ्यास की आवश्यकता होती है। है। यहाँ मुंशी प्रेमचंद और हरिशंकर परसाई जैसे सिद्धहस्त कथासर्जकों सहित, विष्णु प्रभाकर, सुकेश साहनी और रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जैसे निपुण लघुकथाकारों, तथा सुदर्शन रत्नाकर, मंजू मिश्रा, शैलजा सक्सेना और सुषमा गुप्ता जैसे इस विधा के नियमित लेखकों की लघुकथाओं पर समीक्षात्मक टिप्पणियाँ की गई हैं। इनके अलावा हाल के प्रतिभासम्पन्न लेखकों, अर्चना राय, उपमा शर्मा, दिव्या शर्मा, शिवचरण सरोहा, खेमकरन सोमन और पूनम कतरियार द्वारा लिखी लघुकथाएँ भी चर्चा में ली गई हैं। इनकी लघुकथाएँ विशिष्ट साहित्यिक आस्वाद और रंग लिये हुए हैं, तथा इनमें पाठकों को अनायास बाँधे रखने की शक्ति है। इन चुनिंदा लघुकथाओं की उनकी संरचनात्मक बारीकियों और पाठकों तक विषयों और विचारों को प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने की शक्ति के लिए पड़ताल की गई है। प्रत्येक चयनित लघुकथा पर उनकी अद्वितीय शैलीगत, संरचनात्मक, भाषायी, नाटकीय और कलात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए एक संक्षिप्त टिप्पणी अलग से दी गई है।

'बदलते रिश्ते'

मंजु मिश्रा की लघुकथा 'बदलते रिश्ते' शिल्प एवं संरचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। प्रथम वाक्य में ही प्रमुख पात्र संजीवनी से परिचय हो जाता है। यह लघुकथा के पहले ही वाक्य में मुख्य पात्र का प्रभावी दृश्यात्मक ढंग से परिचय कराती है: ''संजीवनी तो बस एकटक छत को घूरते हुए सोचे जा रही थीं. . .'' इसका प्रारम्भिक वाक्य ही उस मुख्य मुद्दे या समस्या से भी परिचय करवा देता है, जिससे मुख्य पात्र जूझ रहा है: ''आज ही तो सही मायने मे वे जान पाई थीं कौन अपना है और कौन पराया।'' यह लघुकथा समाज में बदलते जीवन-मूल्यों का प्रभावी ढंग से चित्रण करती है और पारिवारिक व्यवस्था के साथ-साथ समाज में बहुत तेज़ी से बदलती नैतिकता और आचार-व्यवहार के मानकों को दर्शाती है। विशेष रूप से, यह कहानी बदलते रिश्तों के द्वन्द्वों और दुविधाओं को रेखांकित करती है: बेटी बनाम बेटा, माता-पिता बनाम सास-ससुर, और इसके अलावा एक परिवार में विभिन्न सदस्यों के अधिकारों और कर्तव्यों के बीच का विवाद, इस कहानी के कथ्य में सम्मिलित हैं।

ब्याही हुई बेटी अपने माता-पिता के घर आकर सम्पत्ति के बंटवारे सम्बन्धी बखेड़ा खड़ा कर देती है, जिससे माता-पिता चिन्ताग्रस्त हैं: ''बिट्टी, उनकी तबियत खराब है सुनकर उनको देखने के लिए अपने ससुराल से आई हुई थी। यूँ ही बातों- बातों में उसने कहा- ''अम्मा तुम तो मेरा और भैया का हिस्सा- बाँट अपने हाथों ही कर दो, क्या फ़ायदा कि तुम्हारे बाद हम भाई- बहन के बीच लड़ाई झगड़ा हो. . .'' माँ संपत्ति के बँटवारे के इस मुद्दे को हँसी में टालने का प्रयास करती है ; लेकिन बेटी इस बात पर आक्रामक रवैया अपनाती है, और अपने पक्ष में नए कानूनों का हवाला देती है: ''ऐ अम्मा तुम क्या समझती हो, तुम सब भैया को सौंप दोगी और मैं चुप बैठी रहूँगी, तुम इस गलतफहमी में ना रहना। आजकल बेटा बेटी दोनों का बराबर का हिस्सा होता है, तुमने न दिया, तो मैं कोर्ट कचहरी तक जाऊँगी, मगर ऐसे ही अपना हिस्सा थोड़े छोड़ दूँगी।''

लघुकथाकार एक गंभीर पारिवारिक समस्या को नाटकीय एवं कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। दहेज एक पुरानी समस्या है ; लेकिन माता-पिता इसे बेटी के

धन के रूप में देते रहे हैं। हालाँकि, माता–पिता स्थायी संपत्ति अपने बेटे के लिए रखते हैं। बेटी का मुखर होना परंपरा से बँधे माता–पिता की नैतिक दुविधा और अनिर्णय को जन्म देता है। बेटी पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों के साथ–साथ पारिवारिक प्रेम और सद्भाव के प्रति पूर्ण उदासीनता दिखाती है। लघुकथाकार द्वारा पात्रों की भावनात्मक उथल–पुथल और मानसिक तनाव को कम से कम शब्दों में दर्शाने में भाषा और अभिव्यक्ति की ताकत को महसूस किया जा सकता है। लघुकथा के विषय को दृश्य रूप से दिखाकर संप्रेषित किया गया है; केवल बताने या स्पष्ट विवरण देने से नहीं: ''सब थोड़ी देर तो सन्न से बैठे रहे उसके बाद ममता ने खाना लगाया ; लेकिन सब बिना खाए–पिए ही अपने अपने कमरों में चले गए। वह अपने बिस्तर पर मानो सकते की मारी–सी बैठी थीं और सोच रही थी कि यह सब क्या हो गया, आखिर कहाँ गलती हो गई उनसे. . .''

लघुकथा का चरमोत्कर्ष और निष्कर्ष/ समाधान बहू की सांत्वना, सम्मान, देखभाल और सास–ससुर के प्रति समर्पण के माध्यम से दिया गया है: इतने में उनकी बहू ममता उनके कमरे में आई और उनका हाथ पकड़कर सहलाते हुए बोली? ''अरे अम्मा जी आप काहे को चिन्ता करती हैं, तबियत और खराब हो जाएगी आपकी। मान लीजिए न जीजी की बात, वह जो कह रही हैं। आप तो बस जल्दी से ठीक हो जाएँ और बबली और चिंटू के साथ खेलें, हमारे सर पे आपका साया रहे, हमें इससे ज्यादा क्या चाहिए। आपका आशीर्वाद बना रहे हमें कौन–सी कमी है।'' सास–ससुर को अपनी बेटियों और बहुओं के बारे में गलत और पूर्वकल्पित धारणा का एहसास होता है: ''ममता के जाते ही वे फूट–फूटकर रो पड़ीं, यही सोच सोचकर उनकी आँखों से जारोजार आँसू बह रहे थे कि जिसे पराई समझकर हमेशा मन से दूर रखा, उसने तो हमेशा हमें गले ही लगाया, सुबह शाम अम्मा जी– अम्मा जी करती देखभाल करती रही।'' सास कह उठती है: ''हम ही मूरख थीं जो, सच्चे स्नेह को दिखावा मानकर खुद को ठगाती रहीं। आज वह जान गई थी कि बेटियाँ पराई ही होती हैं, अपनी तो बहुएँ होती हैं, जो नए आँगन में, नई मिट्टी में रोप दी जाती हैं, उसके बाद भी फलती फूलती हैं, ढलती उम्र में हमारा सहारा बनती हैं।'' यह कहानी बेटी के माता–पिता को एक ठोस संदेश देती है कि बेटियों और बहुओं के बीच कैसे व्यवहार करें और संतुलन बनाए रखें: सुबह उठीं, बहू को आवाज़ दी, उसके आने पर बोलीं ... ''सुन तो ममता, रज्जू से कहना बिट्टी की वापसी की टिकट करा दे, जाए। अपना घर– बार देखे बहुत दिन हो गए ...कब तक मायके में पड़ी रहेगी, पराई गृहस्थी में टाँग अड़ाती रहेगी।'' इस लघुकथा के संवाद, भाषायी सहजता और नाटकीय शैली कथ्य का सम्प्रेषण सशक्त रूप से करती है।

'कागज़ की कश्ती'

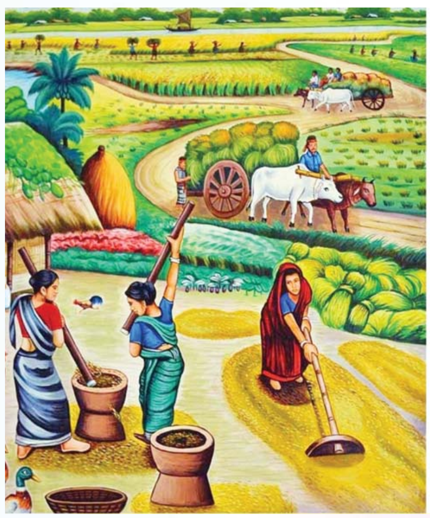

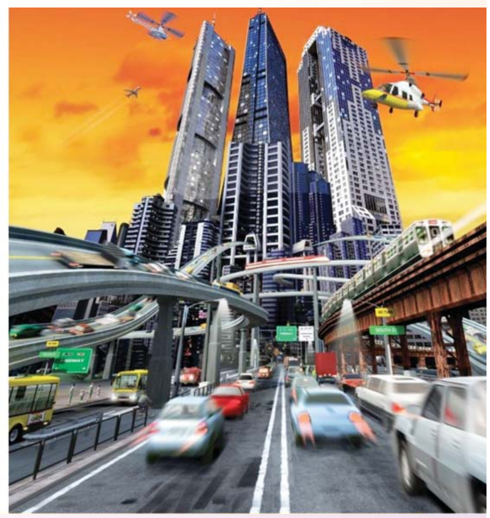

शैलजा सक्सेना की लघुकथा ''कागज़ की कश्ती'' में भी प्रारम्भिक पंक्ति में मुख्य पात्र और समस्या का विवरण दर्शाया गया है: ''माँ गाँव के खुले आँगन से बेटे के शहर के बंद फ्लैट में आई थीं।'' यह लघुकथा ग्रामीण जीवन बनाम शहरी जीवन से संबंधित मुद्दों को प्रभावी ढंग से उठाती है: गाँव के रीति–रिवाजों, मूल्यों, परंपराओं और पर्यावरण पर खतरों का चित्रण करती है। इसके अलावा यह कहानी शहरों में शहरीकरण और जीवन के बहुसांस्कृतिक तरीकों के निरंतर हमले के तहत कई चीजों के संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करती है: ''माँ गाँव में ही रहना चाहती थीं, अपने रहने से वो पुराने रिश्तों को बचा लेना चाहती है, हल्दी–अक्षत वाले त्योहार बचा लेना चाहती हैं, अपने पेड़–पौधों के बीच रहना चाहती थीं, बेटा माँ को बार–बार देखने जाने में समय बचाना चाहता है, पैसा बचाना चाहता है, अपने और अपने बच्चों के बीच रखना चाहता है।'' लेखक मूल्यों के टकराव और मतभेद पर प्रकाश डालती है। वह दो पीढ़ियों के बीच के अंतराल को भरने का प्रयास करती है: ''दोनों की अलग–अलग सोच और अलग–अलग फिक्र!''

लघुकथा दो पीढ़ियों के आपसी संघर्ष का विचारोत्तेजक विवरण प्रस्तुत करती है: ''माँ बच्चों को पुरानी कहानियाँ सुनाती हैं, रात उनके सिर पर तेल मल देती हैं और बहू के दफ्तर चले जाने पर उनके मन के पसंद की चीजें खिलाती, और कभी ताश तो कभी गिट्टे खेलना सिखाती। बहू को लगता कि माँ बच्चों को बिगाड़ रही हैं। वह मुँह बनाती और बच्चों को रोकती, बच्चे न सुनते तो पति को कहती। उसे लगता ऐसे बच्चों का मन पढ़ने से हट जाएगा, ऐसे में उनका भविष्य क्या होगा? वह गंभीर चिन्ता में पड़कर घबरा उठती।'' यह कहानी शहर और गाँव की चीज़ों और घटनाओं के बारे में अलग–अलग दृष्टिकोण और धारणाएँ प्रस्तुत करती है: ''पिछले तीन दिनों से बारिश हो रही थी। इतना पानी गाँव में पड़ता तो ज़मीन पानी पीकर लहलहा उठती, पर यहाँ शहर में कंक्रीट पानी पीती नहीं, केवल जमा करती है और सड़कों पर जाम लगवा देती है।'' यह कहानी शहर की तनावपूर्ण जीवनशैली और गाँव के शांत जीवन के बीच के अंतर को सशक्त ढंग से उजागर

करती है: ''पूरा शहर बारिश के मारे परेशान था। बेटा-बहू झींकते हुए जाते और झींकते हुए आते। माँ को गाँव के झूले और सावन के गीत याद आ रहे थे।''

शहरों का गंदा वातावरण और प्रदूषित हवा और पानी लोगों को स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति चिंतित रखते हैं। वे बीमारों की देखभाल के लिए छुट्टी पर घर बैठने का खर्च वहन नहीं कर सकते। शहरों में ऐसी सभी समस्याएँ शहरवासियों को परेशान करती हैं: ''पत्नी को चिन्ता थी कि पानी जमा होने से जो मच्छर-कीड़े पैदा हो गए हैं, उनके काटे से छोटे बच्चे बीमार न पड़ जाएँ। फिर छुट्टी लेकर घर बैठना पड़ेगा, क्या मुसीबत है।'' गाँव का जीवन तनाव और चिंताओं से मुक्त है। किसी टाइम-टेबल का कोई दबाव नहीं है, बल्कि गाँव के लोग उन्मुक्त नैसर्गिक परिवेश में खुली हवा, स्वस्थ शरीर और शांत मन का आनंद लेते हैं: ''माँ बच्चों के साथ उसमें कागज़ की नाव तैरा रहीं थीं, बच्चे नाव के हिलते-डुलते आगे बढ़ने को मुग्ध होकर देख रहे थे।''

पति के गाँव में बिताए शुरुआती दिनों की यादें, अपनी माँ के साथ बिताए दिन उसे एक साथ आह्लादित एवं निश्चिन्त बना देते हैं। पेपरबोट्स को इस ग्रह पर उपलब्ध मानव जीवन के संक्षिप्त कार्यकाल का आनंद लेने के लिए पानी के एक बड़े पथ में क्षणिक, अल्पकालिक जीवन के लिए एक शक्तिशाली रूपक के रूप में दिखाया गया है: ''पति मुग्ध भाव से तीनों को देख रहा था, कितने मगन, कितने निश्चिन्त, कितने खुश! बूँदा-बाँदी की फिक्र से परे, घड़ी के समय की सोच के बाहर! उसे अपना बचपन याद आया जब माँ उसके साथ कागज़ की नाव बनाकर तैराती थीं। माँ वहीं थीं, बच्चे बदल गए थे।'' लघुकथा का रूपक वाला शीर्षक काफी गहरे अर्थों से भरा है। पानी पर तैरने वाली कागज़ की नावें किसी समय-सीमा से बँधी नहीं होतीं। मानस में रचे-बसे शहरी मूल्यों के कारण बहू अपनी सास के साथ खुलकर बात करने और दूसरों के साथ अपने आंतरिक आनंद की भावना को व्यक्त करने में झिझकती रहती है: ''बहू स्तब्ध सी खड़ी थी, उसके शहरी संस्कार शायद पाँव रोक रहे थे।'' पुरानी यादें आनंदमयी अनुभूतियाँ प्रदान करती हैं। बचपन के अनुभव जीवंत हो उठते हैं। कहानी का संदेश उल्लेखनीय है: हमें इस अस्थायी दुनिया में इस क्षणभंगुर और अस्थायी जीवन की सरल खुशियों का आनंद लेना चाहिए।

'कुत्ते वाले घर'

अपनी लघुकथा ''कुत्ते वाले घर'' में सुकेश साहनी एक आलीशान हवेली का चित्र प्रस्तुत करते हैं जो मानवीय सरोकारों से रहित समृद्धि का प्रतीक है। आरंभिक वाक्य समस्या को चित्रित करता है: ''आलीशान कोठी के गेट को खोलने के लिए उसने हाथ बढ़ाया ही था कि...'' लघुकथा बहुत अमीर और संपन्न लोगों पर केंद्रित है जो ज्यादातर दूसरों के साथ बुरा व्यवहार करते हैं और गरीबों और जरूरतमंदों की चिंताओं के प्रति उदासीन रहते हैं: ''दरवाजा खुला-कोठी के मालिक सामने खड़े थे। उसने अखबार का बिल उनकी ओर बढ़ा दिया। ''क्या अखबार बेचने का काम सब चोर-उचक्कों ने सम्हाल लिया है?'' एकाएक उन्होंने बिल को घूरते हुए उससे कहा।''

लघुकथा के दक्ष शिल्पकार सुकेश साहनी ने गरीबों के प्रति अमीर लोगों के रवैये की समस्या को प्रभावी ढंग से उकेरा है। उन्होंने दर्शाया है कि कैसे अमीर लोग धन के नशे में भौतिकवादी हो जाते हैं, दूसरों के प्रति पूरी तरह से उदासीन हो जाते हैं और उनमें दूसरों के प्रति सहानुभूति की कमी हो जाती है: उन्होंने आँखें निकालकर कहा- ''पच्चीस दिन भी अखबार नहीं पढ़ा और बिल दो महीने का! यहाँ हराम के पैसे समझे हैं क्या?'' अमीर दूसरों की परवाह नहीं करता, जबकि गरीब अपने प्रत्येक दिन के श्रम को याद रखता है और अपने पसीने की हर बूँद का हिसाब रखता है: ''नहीं साहब, आपको गलतफहमी हो रही है। मुझे आपके यहाँ अखबार डालते हुए पूरे दो महीने हो गए... आप मेरी डायरी देख लीजिए।''

गरीब भीख नहीं, मेहनत की कमाई माँगता है। दूसरी ओर, गरीबों के अधिकारों का अमीरों द्वारा अतिक्रमण या दमन किया जाता है: ''साहब, जबान सम्हालकर बात कीजिए... अपनी मेहनत के पैसे माँग रहा हूँ-कोई खैरात नहीं।'' अमीर लोग गरीबों पर झूठे आरोप और दोषारोपण भी कर सकते हैं: ''यही हरामी बरामदे से पंखा चुराकर ले गया है...'' लेकिन गरीब लोग बदनामी से डरते हैं और इसलिए अमीर लोगों के साथ किसी भी तरह के संघर्ष से बचते हैं और इस तरह अपने क्रोध, अपमान और बदले की भावनाओं को दबा देते हैं: ''वह डर गया। गुस्से के बावजूद उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह तेजी से कोठी के बाहर आ गया। गुस्से से उसकी मुट्ठियाँ भींची हुई थीं।'' हालाँकि, झुका हुआ गरीब आदमी अमीरों की तुलना उन कुत्तों से करता है जो गरीबों पर बेवजह भौंकते रहते हैं: ''सामने की दूसरी कोठी के गेट पर 'कुत्ते से सावधान' की तख्ती लगी हुई थी। उसकी इच्छा हुई कि वहाँ से तख्ती को उखाड़कर इस कुत्ते की कोठी पर लगा दे।'' साहनी की लघुकथा गरीबों के गुस्से और पीड़ा को कुशलता से व्यक्त करती है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग, यहाँ तक कि अपशब्द का प्रयोग भी, मानव जगत के विचारोत्तेजक पहलू को प्रकाश में लाता है।

'अश्लील पुस्तकें'

प्रख्यात व्यंग्यकार और लघु कथाकार हरिशंकर परसाई अपनी लघुकथा ''अश्लील पुस्तकें'' में तथाकथित आधुनिक भारतीय समाज में नकली आदर्शवाद या नैतिकता और पाखंड के साथ-साथ मूल्यों के संकट की समस्या उठाते हैं। शुरुआती दृश्य में ही उन्होंने कहानी का केंद्रीय संकट दिखा दिया है: ''शहर में ऐसा शोर था कि अश्लील साहित्य का बहुत प्रचार हो रहा है।'' वे बताते हैं कि समाचार पत्र वह स्रोत हैं जहाँ से समस्या उत्पन्न होती है

और समाज को जकड़ लेती है: ''अखबारों में समाचार और नागरिकों के पत्र छपते कि सड़कों के किनारे खुलेआम अश्लील पुस्तकें बिक रही हैं।'' परसाई युवा दिमागों के साथ-साथ बड़े पैमाने पर समाज पर मीडिया के प्रभाव को रेखांकित करते हैं: ''दस-बारह उत्साही समाज-सुधारक युवकों ने टोली बनाई और तय किया कि जहाँ भी मिलेगा, हम ऐसे साहित्य को छीन लेंगे और उसकी सार्वजनिक होली जलाएँगे।''

युवा गंदी किताबें जब्त कर लेते हैं; लेकिन संकोच एवं झिझक के कारण, क्योंकि वे अपने बड़ों और परिवार के अन्य लोगों से डरते हैं, वे किताबें आपस में बाँट लेते हैं और अगले दिन उन्हें अपने साथ लाने का फैसला करते हैं: पुस्तकें मैं इकट्ठी अभी घर नहीं ले जा सकता। बीस-पच्चीस हैं। पिताजी और चाचाजी हैं। देख लेंगे, तो आफत हो जाएगी। ये दो-तीन किताबें तुम लोग छिपाकर घर ले जाओ। कल शाम को ले आना। हालाँकि, जो हुआ वह उनकी अपेक्षा के विपरीत था: ''दूसरे दिन शाम को सब मिले, पर किताबें कोई नहीं लाया था। मुखिया ने कहा ? किताबें दो, तो मैं इस बोरे में छिपाकर रख दूँ। फिर कल जलाने की जगह बोरा ले चलेंगे। किताब कोई लाया नहीं था।'' परसाई एक कठिन सामाजिक वास्तविकता को सामने लाते हैं कि लोग स्वार्थ से बँधे हुए हैं, और उनकी बुराइयाँ उनके मानस में गहराई तक समाई हुई हैं:

''एक ने कहा- कल नहीं, परसों जलाना। पढ़ तो लें।

दूसरे ने कहा- अभी हम पढ़ रहे हैं। किताबों को दो-तीन दिन बाद जला देना! अब तो

किताबें जब्त ही कर लीं।''

यहाँ तक कि बुजुर्ग तथा परिवार के विभिन्न आयुवर्ग के अन्य सदस्य भी वासना या स्वार्थ से अछूते नहीं हैं:

''तीसरे दिन भी कोई किताबें नहीं लाया।

एक ने कहा ? अरे यार, फादर के हाथ किताबें पड़ गईं। वे पढ़ रहे हैं।

दूसरे ने कहा ? अंकिल पढ़ लें, तब ले आऊँगा।

तीसरे ने कहा ? भाभी उठाकर ले गई। बोली कि दो-तीन दिनों में पढ़कर वापस कर दूँगी।

चौथे ने कहा ? अरे, पड़ोस की चाची मेरी गैरहाजिरी में उठा ले गईं। पढ़ लें, तो दो-तीन दिन में जला देंगे।''

परसाई की लघुकथा अपरिवर्तनीय मानव स्वभाव में एक मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि प्रदान करती है, और कठोर सामाजिक वास्तविकता का एक व्यंग्यपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करती है जिसमें बताया गया है कि कैसे आदर्शवाद आंतरिक राक्षसों के सामने आत्मसमर्पण करता है: ''अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गईं। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी जा रही हैं।'' वास्तव में, परसाई इस तथ्य को उजागर करते हैं कि बड़े पैमाने पर समाज स्थिर है, इसमें कोई गतिशीलता नहीं है। लोगों को कुछ आंतरिक इच्छाओं और प्रलोभनों ने जकड़ लिया है; विशेष रूप से कहें तो, कामुकता या शारीरिक सुख में नैतिकता या शुद्धता केवल अवसर की कमी के रूप में होती है, और वासना कभी नहीं मरती। लघुकथा दर्शाती है कि कैसे सामाजिक सक्रियता या सुधार के प्रति उत्साह आंतरिक वासना और सुखवादी एवं स्वार्थपरक दृष्टिकोण द्वारा छीन लिया जाता है। लघुकथा स्पष्ट करती है कि युवा आदर्शवाद और उत्साह सब अस्थायी अथवा आडम्बरपूर्ण हैं, जो अंतर्निहित स्वार्थ या अहं के अधीन हैं।

'भविष्य'

उपमा शर्मा की लघुकथा 'भविष्य' '' एक रोजमर्रा की समस्या को उठाती है कि कैसे लोग अपनी अच्छी-अच्छी छवि पेश करने के लिए झूठ का सहारा लेते हैं। जैसा कि हम लघुकथा-लेखन की तकनीक में देखते हैं, प्रारंभिक वाक्य पूरी कहानी की कुंजी प्रदान करता है। यह लघुकथा आरंभिक वाक्य में ही मुख्य मुद्दा उठाती है: ''कालेज काउंसिल के स्टैंडर्ड पर खरा नहीं उतरा, तो मान्यता रद्द हो जाएगी। हम सबका भविष्य खतरे में पड़ जाएगा।' विभाग प्रमुख से कालेज के डीन ने कहा।'' यह दयनीय और विचारणीय है कि अच्छी छवि दिखाने के लिए नकली रिकॉर्ड बनाए जाते हैं। चूँकि अधिकारी उच्च-अधिकारियों को मूर्ख बनाते हैं, इसलिए सभी निरीक्षण निरर्थक हो जाते हैं। यह कहानी विशेष रूप से अस्पतालों और सामान्य रूप से कई अन्य संस्थानों की कार्यप्रणाली पर एक बड़ा सवालिया निशान उठाती है:

''रोजाना पाँच-सात फर्जी मरीज दाखिल हुए दिखा देते हैं। इसी तरह कागजों में बैड भर देते हैं। काउंसिल को सत्तर परसेंट बैड-आकुपेंसी ही तो चाहिए।''

''इंस्पैक्शन के वक्त क्या करेंगे ?''

''तब मज़दूरों, भिखारियों, रिक्शावालों को दिहाड़ी पर लाकर लिटा देंगे।'' प्रोफैसर ने मुस्कराते हुए कहा।

यह लघुकथा कुछ हद तक व्यंग्यात्मक ढंग से निराशाजनक वास्तविकता को व्यक्त करती है। समाज और राष्ट्र के प्रति घोर गैर-जिम्मेदारी और गैर-चिंता को दर्शाते हुए संवादों का प्रयोग करके तथ्यों को प्रभावी ढंग से संप्रेषित किया गया है।

'रंग बदरंग'

अन्य लघुकथाओं की तुलना में, शिवचरण सरोहा की लघुकथा 'रंग बदरंग' बहुत छोटी और सांकेतिक है, जो एक अबोध बालिका के व्यक्तिगत अनुभव की कटु वास्तविकता से संबंधित है। यह कहानी शुरुआत में ही एक विषयगत वाक्य भी लेकर आती है, जो मुख्य पात्र प्रिया को परेशान करने वाली समस्या की ओर संकेत करता है:

''ये क्या है प्रिया ?...यह तू क्या बनाने लगी है ? काला आकाश, बिना पत्तों वाला भूरा पेड़, मटमैली धरती... कहाँ गए तेरे गुलाबी फूल और सतरंगी तितलियाँ ?...ये क्या करने लगी है आजकल ? पहले की तरह लाल, पीले, हरे, नीले, चटक रंग क्यों नहीं लगाती अपनी पैंटिंग्स में ?''

बच्ची एक कड़वी सच्चाई से जूझ रही है और गंभीर मानसिक पीड़ा से गुजर रही है, जिसे वह अपनी माँ को भी स्पष्ट रूप से नहीं बताती है:

''बेटा, चटक ख़ूब चटक रंग भर इसमें... तभी तो तेरी पेंटिंग खिलेगी। जा, अपने अंकल को भी दिखा दे।''

''अंकल! नहीं- नहीं...'' वह सकपका उठी।

लड़की के चाचा का एक ही संदर्भ है, जिसे

माँ चाहती है कि वह उसे अपनी पेंटिंग दिखाए ; लेकिन लड़की की अपने चाचा के पास जाने की अनिच्छा से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इस रिश्ते में कुछ अजीब और अवांछित है। लेखक के अनकहे शब्द लड़की के अपने चाचा के साथ कड़वे अनुभव और उस रिश्ते के बारे में घृणित भावना के बारे में बहुत कुछ बताते हैं।

इस लघुकथा में एक महत्त्वपूर्ण संदेश है कि माता-पिता को अपने बच्चों की बातों को गंभीरता से लेना चाहिए और कभी भी उनकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए। बच्चों की चुप्पी या असामान्य व्यवहार गंभीर चिंता का विषय हो सकता है। प्रस्तुत लघुकथा में बच्ची का डर अनाचारपूर्ण रिश्ते का संकेत देता है, जिस पर उसकी माँ को पूरा ध्यान देना था। उसे अपनी बेटी के सामान्य व्यवहार में आए बदलाव को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए : ''मम्मी पलटकर किचन में चली गई और बदरंग पेंटिंग हाथ में लिये गुमसुम उदास खड़ी रह गई प्रिया।'' 'कथादेश' द्वारा आयोजित लघुकथा लेखन प्रतियोगिता में पुरस्कृत यह लघुकथा सांकेतिकता एवं शाब्दिक मितव्ययिता के साथ एक ज्वलन्त मुद्दे से सम्बन्धित विचार का सम्प्रेषण प्रभावी रूप से करती है।

'कुछ नहीं खरीदा'

सुदर्शन रत्नाकर की लघुकथा 'कुछ नहीं खरीदा' भी अत्यंत संक्षिप्त है, जो एक दृश्यक्रम पर क्षणिक अवलोकन एवं टिप्पणी के रूप में है। इस लघुकथा का सार यह है कि लोग दूसरों को सलाह देने में तो अच्छे होते हैं ; लेकिन शायद ही कभी उसे अपने जीवन में लागू करते हैं यानी 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'। साथ ही, कहानी इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि बच्चे अत्यधिक उत्सुक एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षक होते हैं, जो अपने बड़ों के नक्शेकदम पर चलते हैं, और कभी भी उनके गलत कदमों को नजरअंदाज नहीं करते हैं।

कहानी की शुरुआत एक महिला से होती है जो अपने बेटे के साथ समुद्र तट पर अन्य लोगों को देख रही है। वह एक स्थानीय विक्रेता को स्वदेशी स्टोल और हार पेश करते हुए देखती है, जिसे लोग हाथ में लेते हैं, कीमत पूछते हैं और उन्हें खरीदे बिना वापस कर देते हैं। लोगों का यही रवैया उस महिला की चिंता का केंद्र बन जाता है। वह कलाकृतियों के स्थानीय विक्रेता के साथ इतना उदासीन व्यवहार करने के लिए लोगों की आलोचना करना शुरू कर देती है, बजाय इसके कि उसे बढ़ावा दे और उसकी कड़ी मेहनत के लिए कुछ देखभाल और पैसे देकर मदद करे। उनका बेटा भी ये सब देख रहा है और साथ ही अपनी माँ को भी देख रहा है। वह लोगों के रवैये पर प्रतिक्रिया करती है:

लाखों का ख़र्चा कर के इस टापू पर आकर मनोरंजन करने वाले सैलानी यहाँ की कला को नहीं ख़रीद सकते। मूल निवासियों की सहायता नहीं कर सकते। उसे बहुत अचरज हो रहा था। अनायास ही उसके मुख से निकला, ''कितने ओछे हैं लोग।''

माँ की टिप्पणी पर, उसका बेटा भी तुरंत उसके रुख पर टिप्पणी करता है: ''आपने भी तो कुछ नहीं ख़रीदा मम्मा।'' लेखक एक उदाहरण के माध्यम से मानवीय कमजोरियों और भ्रांतियों को संप्रेषित करने में सफल रहा है।

'राजनीति'

सुषमा गुप्ता की बहुत छोटी लघुकथा 'राजनीति' में देखा जा सकता है कि कैसे युवा अपनी उच्च राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए उचित या अनुचित तरीकों का सहारा लेते हैं; समाज पर किसी नैतिक प्रभाव की परवाह किये बिना। लेखक आरम्भ के वाक्य में मुख्य पात्र के आंतरिक द्वंद्व को सामने लाती है: ''अबे तूने ये क्या तमाशा लगाया है। 'हिंदुस्तान मुर्दाबाद, पाकिस्तान जिंदाबाद?'? राहुल ने युनिवर्सिटी कैम्पस में भीड़ देख मोहन से पूछा।'' यह लघुकथा भारत में राजनीति में प्रवेश करने के लिए लोगों द्वारा अपनाए जाने वाले तरीकों पर कटाक्ष करती है। यह बताता है कि राष्ट्र के लिए कम से कम चिंता वाली सनसनीखेज ब्रेकिंग न्यूज बनाने की मीडिया की आत्मकेंद्रित चिंता ने देशभक्ति की भावना को कैसे कुचल दिया है:

''मुझे राजनीति में जाना है। कई साल से देशभक्ति के नारे लगा रहा हूँ। कोई ध्यान ही नहीं देता। आज ज़रा पाकिस्तान जिंदाबाद क्या बोला, तू सामने भीड़ देख और तो और मीडिया वाले भी जमघट लगाए हैं।''

राजनीतिक दल भी उन लोगों के लिए अपने दरवाजे खोल देते हैं जो बेधड़क और बेशर्मी से झूठ बोलने में माहिर होते हैं। यह खेदजनक है कि झूठ बोलना किसी राजनीतिक दल में शामिल होने और चुनाव में टिकट पाने के लिए प्राथमिक पात्रता बन जाता है:

''अबे गधे जेल जाएगा।''

. . . ''जेल जाते ही हीरो बन जाऊँगा। सब अखबारों में छा जाऊँगा। फिर अपनी बात से पलट जाऊँगा। बेरोजगारी की झुँझलाहट का जामा पहनाऊँगा और किसी न किसी बड़ी पार्टी का टिकट पा जाऊँगा।''

यह लघुकथा व्यंग्यपूर्ण ढंग से यह संदेश देती है कि नागरिकों, मीडिया, अधिकारियों और राजनेताओं, सभी को राष्ट्र की सेवा करते समय नैतिकता बनाए रखनी चाहिए।

'मनीऑर्डर'

खेमकरण सोमन ने अपनी लघुकथा 'मनीऑर्डर' में सगे भाइयों के बीच पारिवारिक विवाद के बाद की स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। वह बताते हैं कि कैसे रक्त संबंधों के बीच शब्दों के आदान-प्रदान के बावजूद, और जब वे एक-दूसरे के साथ बातचीत नहीं करते हैं तब भी अंतर्निहित प्रेम कभी नहीं मरता है। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि जरूरत के समय समझौता करने या मदद के लिए हाथ बढ़ाने की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाया जाए।

लघुकथा का प्रारंभिक वाक्य भाइयों के बीच के विवाद को उजागर करता है: ''घर का बँटबारा और बोलचाल बंद हुए कई वर्ष बीत चुके थे।'' लेखक दोनों भाइयों की आपसी कलह और उसके समाधान के रास्ते को संवादों के माध्यम से काफी नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता है और कही गई बातों के बजाय अनकही बातों के जरिए बहुत कुछ बता देता है। बड़े भाई की पत्नी पहल करती है। वह अपने पति से झूठ बोलकर कुछ पैसे माँगती है कि उसे अपनी माँ को पैसे भेजने हैं। पति बिना कोई सवाल पूछे उसे पैसे दे देता है। वह अपने पति के छोटे भाई की पत्नी को उसके परिवार में चल रहे आर्थिक संकट पर

चिंता महसूस करते हुए पैसे देती है:

''पाँच हजार रुपये चाहिए।'' एक दिन बड़े भाई की पत्नी बोली? ''माँ बीमार है। गाँव मनीऑर्डर करना है।'' बड़े भाई ने कुछ नहीं कहा। शान्त भाव से पैसे दे दिए। पैसे लेकर बड़े भाई की पत्नी फिर सीधे अपने देवर-देवरानी के घर पहुँच गई। वह उनके आर्थिक संकट से विचलित थी। पैसे दिए तो दोनों संकोच से गड़ गए।

पति अपनी पत्नी को अपने भाई के परिवार की मदद करते हुए चोरी-छिपे देखता है, लेकिन चुप रहता है। वह उससे केवल यही कहता है: ''ठीक है। समय-समय पर इसी तरह मनीऑर्डर करा दिया करो।'' बड़े भाई लगभग रो पड़े। कमरे से निकलते हुए बोले? ''अपना ही खून है।'' वास्तव में, इस लघुकथा में पाठकों के लिए एक सकारात्मक संदेश है। इस कहानी का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि यह न केवल एक प्रश्न खड़ा करती है, बल्कि एक प्रासंगिक और व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत करती है।

'रसोई'

दिव्या शर्मा की लघुकथा ''रसोई'' एक परिवार में एक समय में दो पीढ़ियों के पुरुष और महिला दृष्टिकोण के बीच टकराव का एक शक्तिशाली विवरण है। लघुकथा एक वैध मुद्दा उठाती है कि घर का नक्शा और योजना बनाते समय कोई भी गृहिणी के रूप में एक महिला के दृष्टिकोण को नजरअंदाज नहीं कर सकता है।

लघुकथा की शुरुआत दो मुख्य पात्रों, पति-पत्नी सुधीर और विभा से होती है। सुधीर ने उत्साहपूर्वक अपने पिता को नए घर का नक्शा और लेआउट प्लान दिखाया और बताया कि उन्होंने ड्राइंग रूम और बेडरूम के लिए पर्याप्त जगह रखी है: ''पापा देखो, चार कमरे निकल आए हैं और मंदिर के लिए अलग स्पेस भी।''? सुधीर ने उत्सुकता से पिता के सामने नक्शा बिछाकर कहा; लेकिन पत्नी विभा तुरंत टोकती हैं और पूछती हैं कि उन्होंने किचन के लिए कितनी जगह दी है:

''रसोई का क्या साइज है?'' विभा ने पूछा।

''अरे यार तुम चाय रखो पहले, बहुत थक गया हूँ।'' सुधीर ने विभा की बात को अनसुना कर बोला।

''आठ बाई आठ की रसोई तो बहुत छोटी बनेगी।''- विभा बोली।

''आठ बाई आठ की रसोई छोटी नहीं होती और वैसे भी तुम्हें कौन- सा रसोई में खाट बिछानी है! खाना ही तो बनाना है।'' - चाय का घूँट भरते हुए सुधीर ने कहा।

यह सवाल सुधीर को परेशान करता है, क्योंकि उसे लगता है कि रसोई के लिए ज्यादा जगह की जरूरत नहीं होती। हालाँकि, विभा का दृष्टिकोण बिल्कुल अलग है। विभा इस बात पर ज़ोर देती हैं कि रसोई घर में सबसे महत्त्वपूर्ण जगह होती है।

''मेरा तो पूरा दिन ही वहीं बीतता है बस खाट ही नहीं बिछाती। गर्मी में कितनी घुटन हो जाती है, तुम क्या जानो।'' विभा के स्वर में उदासी थी।

''अरे यार, मम्मी ने पूरी जिंदगी इस छह बाई छह की रसोई में बिता दी, उन्होंने तो कभी शिकायत नहीं की, छोटी रसोई की!''-सुधीर ने चिढ़ते हुए कहा।

''कभी खड़े होकर देखना जून की गर्मी में। खुद पता चल जाएगा मैं शिकायत कर रही हूँ या परेशानी बता रही हूँ।'' -विभा बोली।

सुधीर की माँ भी रसोई का आकार तय करने में अपनी बहू का पक्ष लेती है: ''बिल्कुल सही है। औरत की पूरी जिंदगी रसोई के धुँए में स्वाहा हो जाती है; लेकिन किसी को इसका एहसास नहीं होता। सुधीर तू रसोई का साइज दो फुट बढ़ा और देख रसोई में हवा और रौशनी बराबर हो।''?माँ ने आदेश दिया। अंत में, सुधीर और उसके पिता को महिलाओं के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा, क्योंकि केवल वे ही रसोई के माध्यम से परिवार का भरण-पोषण करती हैं: ''नहीं माँ, आपकी बहू को कुछ नहीं कहूँगा; क्योंकि जान गया हूँ कि बहुमत उसी के पास है।'' सुधीर ने दोनों हाथ विभा की ओर जोड़ दिए। 'बहू' के 'बहुमत' में लेखक का यमक प्रयोग पाठक को अनायास बाँध लेता है।

'पानी की जाति'

अपनी लघुकथा ''पानी की जाति'' में, विष्णु प्रभाकर ने पानी को प्रकृति के एक शक्तिशाली प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है। जल जीवन के सतत प्रवाह को दर्शाता है। अपनी गंधहीन, रंगहीन, पारदर्शी, क्षणभंगुर, अस्थायी, और निरंतर प्रवाहशील प्रकृति में, पानी इस संसार के वास्तविक स्वरूप का भी प्रतीक है? जो क्षणभंगुर और अस्थायी है; तथा जिसकी निर्मिति में धर्म, जाति, पंथ, समुदाय के आधार पर किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव स्थायी नहीं है। वास्तव में, सभी प्रकार के भेद मानव-निर्मित हैं। प्रकृति ने अपनी विविध रचनाओं के बीच ऐसा कोई विभाजन या सीमांकन नहीं किया है।

इस लघुकथा का प्रमुख विषय हिंदू-मुस्लिम समुदायों के मध्य की अस्पृश्यता है, जिसे संकट या विशिष्ट आवश्यकता के क्षण में नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। प्रभाकर प्रभावी ढंग से चित्रित करते हैं कि कैसे बीमारी, परेशानी या निज प्राण-रक्षा की आवश्यकता आन पड़ने पर मनुष्य के लिए धर्म या जाति के सभी विभाजन अर्थहीन हो जाते हैं। संकट के क्षण में मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य जीवन बचाना हो जाता है।

लघुकथा के आरम्भ में समस्या सामने आ जाती है: ''बी.ए. की परीक्षा देने वह लाहौर गया था। उन दिनों स्वास्थ्य बहुत ख़राब था।. . . मार्ग में तबीयत इतनी बिगड़ी कि चलना दूभर हो गया। प्यास के कारण, प्राण कंठ को आने लगे।'' निश्चय ही लघुकथा के प्रमुख पात्र के लिए यह घोर संकट का समय था। वह मुसलमानों की बस्ती से गुज़र ही रहा था, कि बेहोश होने की स्थिति में आ गया था। ऐसे में उसे मानवीय सहायता की दरकार थी, उसने हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव को त्यागकर एक मुस्लिम की दूकान में शरण ले ली।

दुकान के मुसलमान मालिक ने उसकी ओर देखा और तल्ख़ी से पूछा— ''क्या बात है'' जवाब देने से पहले वह बेंच पर लेट गया। बोला— ''मुझे बुखार चढ़ा है। बड़े ज़ोर की प्यास लग रही है। पानी या सोडा, जो कुछ भी हो, जल्दी लाओ!'' मुस्लिम युवक ने उसे तल्ख़ी से जवाब दिया— ''हम मुसलमान हैं।'' वह चिनचिनाकर बोल उठा— ''तो मैं क्या करूँ'' वह मुस्लिम युवक चौंका। बोला— ''क्या तुम हिन्दू नहीं हो? हमारे हाथ का पानी पी सकोगे'' उसने उत्तर दिया— ''मेरी जान निकल रही है और तुम जात की बात करते हो। जो कुछ हो, लाओ!''

वह मुसलमान के हाथ का पानी पीकर राहत महसूस करता है। लेखक ने मानव धर्म को पानी की प्रकृति से जोड़कर बहुत प्रभावी ढंग से लघुकथा का उपसंहार प्रस्तुत किया है: ''उसका मन शांत हो चुका था और वह सोच रहा था कि यह पानी, जो वह पी चुका है, क्या सचमुच मुसलमान पानी था?'' नि:सन्देह, यह लघुकथा वर्तमान समाज में मानवीय मूल्यों के संरक्षण, तथा धर्म व जाति के संकीर्ण भेदभाव से ऊपर मानवीय गरिमा के आह्वान को गंभीरता से दर्ज करती है।

'डोरियाँ'

अर्चना राय की लघुकथा ''डोरियाँ'' अनिवार्य पारिवारिक मूल्यों को पोषित करती है, जो धन, संपत्ति या भौतिक लाभ के विचारों से ऊपर हैं। यह लघुकथा एक असहाय पिता को दर्शाती है जो अपने पुत्र एवं पुत्रवधू द्वारा अपनी देखभाल से अनुगृहीत है; यह एक पुत्र के चरित्र को चित्रित करती है, जो अपने पिता की यथासम्भव देखभाल करता है; और यह एक अत्यधिक प्यार करने वाली, सम्मान करने वाली, और देखभाल करने वाली बहू के चरित्र को भी हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत करती है। बहू की भूमिका को बहुत प्रभावी रूप से दर्शाया गया है, जिसे ससुर ने भी अपनी स्नेही माँ के समान देखा/माना है। सच में, यह लघुकथा बच्चों से प्रेम, आदर, एवं वाञ्छित सेवा-सुश्रूषा प्राप्त करने में एक पिता की आंतरिक आनंद की अपरिभाषित अनुभूति का प्रलेखन करती है।

लघुकथा का प्रारम्भ होता है एक पिता की चिन्ता से: ''अस्पताल के बेड पर पड़े -पड़े दुख और ग्लानि से उनका दिल बैठा जा रहा था। जब से उन्हें पता चला कि उनके आपरेशन के लिए बेटे ने घर गिरवी रख पैसे जुटाए हैं. . .'' एक पिता के दायित्व को निभा पाने में असमर्थ रहने पर उस पिता के हृदय की पीड़ा को मार्मिक दृश्य में दर्शाया गयाहै: ''बेटे- बहू को सामने से आते देख उनका जी चाहा कि अभी धरती फट जाए और वे उसमें समा जाएँ। मैं अपने बेटे से कैसे नजरें मिला सकूँगा, बहू मेरे बारे में क्या सोच रही होगी? पिता तो वह होता है जो बच्चों के दुख- तकलीफ दूर करता है। और एक वह है, जिसने अपने बच्चों को ही तकलीफ में डाल दिया है। एक्सीडेंट में मैं मर क्यों न गया, मन- ही- मन अपने आप को लानतें दे रहे थे।'' लेकिन पुत्र के ढाढसपूर्ण शब्दों से उनके तप्त हृदय को शीतलता प्राप्त होती है: ''पर बेटा... मेरी वजह से घर....''? कहते हुए उनकी हिचकियाँ बँध गईं। ''कोई बात नहीं पिताजी आपके साथ और आशीर्वाद से ऐसे कई घर बना लेगें।'' बेटे ने ढ़ाढ़स बँधाया।

पुत्रवधू की सान्त्वना से वे द्रवित हो जाते हैं: ''पिताजी!...आप बिल्कुल भी चिंता मत कीजिए .... सब ठीक हो जाएगा।''? आगे बढ़कर बहू ने ससुर के माथे पर प्यार से हाथ फेरकर सहलाते हुए कहा। लघुकथा का अन्त भावनात्मक दृश्य के साथ हुआ है, जिससे कथ्य को अत्यन्त मार्मिक ढंग से सम्प्रेषित किया गया है: ''ममता- भरा नर्म स्पर्श पाकर उन्होंने आँखें खोलीं। सामने देखकर वे चकित रह गए! अचानक उन्हें बहू के चेहरे में अपनी माँ की छवि दिखाई दे रही थी। वह भी तो ऐसे ही उनके सिर पर हाथ फेर सारी तकलीफें हर लेती थी। वहाँ खड़ी नर्स की आँखें बरबस भीग गईं। एक तीस साल की माँ का साठ साल के बेटे को दुलार करते देखकर!''

'बुद्ध'

पूनम कतरियार की लघुकथा ''बुद्ध'' ग्रामीण जीवन शैली को दर्शाती है, जो देहाती जीवन के अतुलनीय आनन्द और एक निर्धन भूमिहीन ग्रामीण की जीवन के प्रति अत्यधिक संतोषपूर्ण दृष्टिकोण एवं सोच से परिपूर्ण है। यह लघुकथा संतुष्टि, शांति, विश्रान्ति, आह्लाद, सादगी, सरलता, सहजता, नि:स्वार्थ प्रेम और परोपकार की भावनाओं का चित्रण करती है जो वास्तव में ग्रामीण जीवन का एक अनूठा पहलू है। लेखक एक शहरी व्यक्ति की आंतरिक अनुभूति को चित्रित करता है जो इस सांसारिक जीवन को समझ पाने के विषय में बुद्धत्वपूर्ण है। एक शहरी व्यक्ति एक रिसॉर्ट विकसित करने के लिए अपनी गाँव की भूमि को एक बिल्डर को बेचकर अरबपति बनना चाहता है। लेकिन भूमिहीन ग्रामीण की आत्म-संतुष्ट जीवनशैली उसके दृष्टिकोण को पूरी तरह से बदल देती है, और वह बिल्डरों को भूमि बेच देने का विचार छोड़ देता है। गाँव की जीवनशैली में सुखद शांति और उत्साह पाकर ऐसा लगता है जैसे उसकी सारी इच्छाएँ वहीं पूरी हो गईं।

लघुकथा के प्रथम दृश्य में प्रमुख पात्र, शहर का एक धनाढ्य व्यक्ति, अपनी चिन्ता को अभिव्यक्त करता है: ''महाबोधि-मंदिर को दूर से ही प्रणाम करते हुए, उन्होंने अपनी मनोकामना पूर्ण होने की मन्नत माँगी।'' और साथ ही वह धनिक पात्र अपनी हार्दिक इच्छा भी कह देता है: ''दूर तक फैले विशाल खेतिहर ज़मीन को देखते हुए उन्होंने सोचा? ''अब सब झमेला ख़त्म हो जाएगा। बार-बार फ़सल बुआने-बेचने में छुट्टी बर्बाद होती है। अभी दो महीने पहले ही तो धान की फ़सल कटवा-बेचकर गए थे। अच्छा है, अब बिल्डर को रिसॉर्ट बनाने देकर, करोड़ों में खेलेंगे!'' यही नहीं, गाँव की भूमि को बेचकर वह वहाँ पर बनने वाले रिसॉर्ट और उससे होने वाले और अधिक धनागम के मधुर स्वप्न देखने लगता है: ''बिल्डर का इंतज़ार करते हुए, उनकी आँखों में रिसॉर्ट का स्वरूप झिलमिलाने लगा ?दूर तक फैले रिसॉर्ट में लॉन टेनिस, वॉलीबॉल, टेबुल-टेनिस आदि अनेक प्रकार के खेलों के शानदार कोर्ट, कृत्रिम झील में तैरते छोटे-बड़े, जल-नौकाएँ ...चीन, जापान, श्रीलंका, थाईलैंड आदि अनेक देशों के बौद्ध-धर्मावलंबियों और पर्यटकों से गुलजार रिसॉर्ट!

इस बीच उस धनाढ्य व्यक्ति का ध्यान जाता है गाँव के एक भूमिहीन निर्धन व्यक्ति रघुआ पर। वह उससे वार्तालाप करने लगता है: रौबदार आवाज़ में रघुआ को आवाज़ दी- का रे रघुआ, यहाँ से बुद्ध-भगवान का मंदिर दस-बारह किलोमीटर ही होगा न? बिदेशी लोग तो इधर खूब आते होंगे?

''जी हुजूर, मंदिर तो ज्यादा दूर नहीं है। बाक़ी बिदेसी सबका हमको नहीं पता। हमनी का तो दिन आप मालिक लोगन के खेती-बारी और गाय-गोरू में बीत जाता है...बच्चा सब सरकारी स्कूल में पढ़-लिख रहा है और जिनगी में का चाही।''

रघुआ की संतोषपूर्ण जीवनशैली और गाँव की सहज-सरल दिनचर्या अपना प्रभाव दिखाती है: ''ताजे छाछ के स्वाद में घुली उनकी ज़ुबान लटपटा गई और वे फ़ोन पर कह रहे थे?''सॉरी, मुझे वह प्रोजेक्ट कुछ ख़ास नहीं लग रहा।'' फोन काटते ही उन्हें बोध हुआ कि उनके सिर से एक बड़ा बोझ उतर गया है।'' अपनी भूमि के विषय में दिन-रात चिन्तित रहने वाले धनिक का हृदय परिवर्तन तथा वैचारिक व्यपवर्तन लघुकथा के उपसंहार में प्रभावपूर्ण दृश्य के साथ सम्प्रेषित हुआ है: ''चारों ओर नज़र घुमाई तो रघुआ और आस-पास रह रहे अपने खेतों में काम करनेवाले भूमिहीन परिवारों को अपने दैनिक कार्यकलापों में व्यस्त देखा, उनकी आँखें ख़ुशी से भर आईं और वे असीम आनंद में डूब गए।''

'लौहद्वार'

लघुकथा के कुशल शिल्पकार रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' की रचना 'लौहद्वार' एक राज्य में कुशासन और भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था की तस्वीर को व्यंग्यात्मक तरीके से प्रस्तुत करती है। राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था के दृश्यों के चित्रण और अधिकारियों और आम आदमी के बीच संवाद के माध्यम से, लेखक दर्शाता है कि कैसे राज्य में शांति भंग हो गई है, और राज्य में व्यवस्था के खिलाफ जनता में असंतोष व्याप्त है। राज्य के न्यायिक तंत्र में सत्य अनसुना रहता है। सभी मंत्री और न्यायकर्त्ता जनता की समस्याओं के प्रति उदासीन हैं, जबकि शासक भी इसके प्रति या तो अनभिज्ञ है या पूरी तरह से लापरवाह है।

लेखक ने इस समस्या की उत्कटता को सम्प्रेषित करने के लिए शाब्दिक चातुर्य का प्रयोग किया है, यह दिखाने के लिए कि किस प्रकार समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण उत्पन्न बौखलाहट में शान्तिप्रिय व्यक्ति भी सत्य के प्रकाश को पहचान पाने में अक्षम हो जाता है: ''यह कौन -सा समय है फ़रियाद करने का''?लौह-द्वार को बाहर की ओर धकेलकर खोलते हुए द्वारपाल झुँझलाया। ''हुज़ूर, सत्यप्रकाश को शन्तिप्रिय ने मार दिया।''- आम आदमी भयभीत स्वर में बोला।

भ्रष्ट राजतन्त्र और सुषुप्त न्याय व्यवस्था में शान्तिप्रिय व्यक्ति पागलपन की कगार तक पहुँच जाए, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी: ''न्याय मंत्री जी को सूचित करना था, ताकि वे शान्तिप्रिय के पागलपन पर रोक लगा सकें।''

''वे अभी सो रहे होंगे। तुम्हें इतनी जल्दी नहीं आना था।'' राजतन्त्र के भ्रष्टाचार के विरुद्ध आम आदमी की आवाज़ को सुनने वाला कोई नहीं रहता: ''शान्तिप्रिय पर शैतान सवार हो गया है। वह भीड़ लेकर उसके परिवार तक को मारने पर तुला है। उसको न रोका गया, तो अनर्थ हो जाएगा।? आम आदमी गिड़गिड़ाया।''

सरकारी तंत्र में घोर भाई-भतीजावाद या पक्षपात व्याप्त है, जिसे लेखक ने प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। ऊपर तक पहुँच न हो तो आम आदमी की पुकार का कोई न्यायाधीश, अधिकारी या मन्त्री स्वतः संज्ञान तो क्या लेगा, उसे निकट भी आने न देगा, इस कटु तथ्य को लेखक ने इस दृश्य में विचारोत्तेजक शब्दों में सम्प्रेषित किया है: ''आपकी पहुँच किसी ऊपरवाले तक है, जो मंत्री जी से आपकी सिफ़ारिश कर दे।'' ''मेरी पहुँच किसी ऊपरवाले तक नहीं है। मंत्री जी स्वतः संज्ञान भी तो ले सकते हैं।'' ''ठीक है, घर में जाकर बैठो। स्वतः संज्ञान लेने की प्रतीक्षा करो।'' द्वारपाल ने चीखते हुए लौह- द्वार को बलपूर्वक बन्द कर दिया।''

'बंद दरवाज़ा'

हिन्दी उपन्यास के सम्राट तथा हिन्दी कहानी को नई दिशा प्रदान करने वाले मुंशी प्रेमचंद लघुकथा के शिल्प में भी सिद्धहस्त थे। उनकी लघुकथा ''बंद दरवाज़ा'' विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो लघुकथा के शिल्प एवं सम्प्रेषण की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, और लघुकथाकारों के लिए एक मानक रचना कही जा सकती है। इस लघुकथा की संरचना काफ़ी जटिल है, जिस कारण मात्र एक बार पढ़ने से इसकी संप्रेषणीयता कठिन हो जाती है, परन्तु एकाधिक बार पढ़ने से इसके कथ्य और शिल्प को समझा जा सकता है। प्रथम पंक्ति – ''सूरज क्षितिज से निकला, बच्चा पालने से। वही स्निग्धता, वही लाली, वही ख़ुमार, वही रोशनी'' – उदीयमान सूर्य और पालने से बाहर पग धरते बच्चे के समानांतर को सुन्दर कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। दरवाज़े के बाहर बच्चे के लिए एक नई / पृथक् दुनिया है, जिसे देखकर वह विह्वल हो उठता है। बच्चा बरामदे में बैठे अपने पिता की गोद में जाकर शरारतें करने लगता है; क़लम-कागज़ के साथ खेलने लगता है; गोद से

उतारा तो मेज़ के पाये के साथ खेलने लगता है; चिड़िया फुदकती हुई आई तो उसे बुलाने लगता है; लेकिन जब चिड़िया उड़ जाती है तो निराश हो रोने लगता है; खुले हुए दरवाज़े से 'गरम हलवे' की मीठी पुकार आई तो बच्चे का चेहरा चाव से खिल उठा, लेकिन उसी क्षण खोंचेवाले को देख उसका ध्यान फिर भटक जाता है; वह पिता से याचना-फ़रियाद करता है, लेकिन; (क्योंकि पिता बाज़ार की चीज़ें बच्चों को खाने नहीं देते) विफल रहता है, उदास हो जाता है; पिता उसे अपना फाउंटेन पेन देते हैं, तो फिर प्रसन्न हो जाता है; इसी बीच जैसे ही हवा से दरवाज़ा बंद होने की आवाज़ उसे सुनाई देती है, वह पेन को भी फेंक देता है, और रोता हुआ दरवाज़े की तरफ़ चल पड़ता है।

इस सारे घटनाक्रम में 'दरवाज़े के बाहर की दुनिया' में बच्चा कई प्रलोभन देखकर भ्रांतचित्त होकर टहलता है, लेकिन तभी तक जब तक 'दरवाज़ा खुला हुआ था'; जैसे ही दरवाज़ा बंद होता है, बच्चा सब चीज़ों से ध्यान हटाकर, सब कुछ त्याग कर, रोता हुआ दरवाज़े की ओर बढ़ने लगता है। 'दरवाज़ा' इस लघुकथा में एक सशक्त बिम्ब बना है, जो एक नन्हे बच्चे की दृष्टि में घर के बाहर और अंदर की दुनिया के वैषम्य को दिखाता है। दरवाज़े के बाहर प्रलोभन अनेक हैं, परन्तु सुरक्षा का भाव दरवाज़े के भीतर है। दरवाज़ा इस लघुकथा की धुरी बन गया है, जिसके इर्दगिर्द कहानी घूमती है। कथाकार ने बारम्बार इसी पर ध्यान केंद्रित किया है: 'दरवाज़ा खुला हुआ था' से आरम्भ होकर 'दरवाज़ा बंद हो गया था' पर कथा पूर्ण होती है। बच्चा दरवाज़े के बाहर के दृष्टिक्रम से लुब्ध-आकृष्ट होता है, परन्तु तभी तक जब तक घर का दरवाज़ा खुला रहता है; दरवाज़ा बंद होते ही वह सब कुछ भुलाकर उसी ओर मुड़ जाता है।

दरवाज़े के अंदर की दुनिया को कथाकार ने अव्यक्त रखा है, किंतु स्पष्टत: अनुपस्थिति में भी बच्चे की माँ अपनी उपस्थिति बनाए हुए है। बच्चा किसी भी हाल में अपनी माँ को नहीं भूला है; दरवाज़ा खुला रहते उसे माँ की सुरक्षा की प्रत्याभूति बनी रहती है, लेकिन दरवाज़ा बंद होते ही वह असुरक्षित अनुभव करने लगता है। दरवाज़े के अंदर बच्चे के लिए माँ की सुरक्षा है, ममत्व है, वात्सल्य है, विश्वास है, आराम है, सुकून है, अपनत्व है, निजत्व है, स्वातन्त्र्य है, स्वाधिकार है, जो उसे बाह्य संसार में नहीं मिलता। साथ ही दरवाज़े के भीतर की दुनिया, जहाँ बच्चे का पालना है, उसकी जड़ें हैं, जिनकी ओर वह वापस मुड़ आता है। कथा के आरम्भ में क्षितिज में उदित सूर्य अंधकार के घिरने से पूर्व क्षितिज-दरवाज़े पर आ जाता है। शीर्षक 'बंद दरवाज़ा' बच्चे के तनाव के केन्द्रबिन्दु को इंगित करता है - दरवाज़े के बंद होने से ही उसका ध्यान बाह्य प्रलोभनों से हटता है, और द्वन्द्वों से मुक्त होकर, एकमन होकर, वह दरवाज़े के अन्दर की ओर मुड़ता है।

कथाकार के पैने अवलोकन के कारण यह कथा लघ्वाकारी होते हुए भी बहुत से दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। एक बालक के हठ एवं व्यग्रता के माध्यम से बाल-मनोविज्ञान की जटिलता को सहजता से उकेरती है। कुछ समकालीन समाज के सत्य को भी उजागर करती है, जैसे - मानव के जीवन में घर-परिवार के महत्त्व को कहती है; मातृशक्ति के महत्त्व को कहती है; और पितृसत्तात्मक सामाजिक विभाजन में पिता (पुरुष) को घर के बाहर और माता (स्त्री) को घर के अंदर के क्रियाकलाप तक सीमित रखते हुए भी माँ की ममता का सब पर भारी पड़ने को मार्मिक ढंग से दर्शाती है।

प्रेमचंद की लघुकथा 'बंद दरवाज़ा' में कहानी की संपूर्णता है; एक ही दृश्य के सीमित परिवेश की इतिवृत्तात्मकता में जीवंतता है, पात्र-संघर्ष की सहजानुभूति है, घर की उष्मापूरित 'फील' है, बालमन की ऋजुता, आकुलता व मृदुल भावात्मकता है। शिल्प, शैली एवं कथ्य की दृष्टि से प्रेमचंद की यह लघुकथा बेजोड़ है। सरल-सहज भाषा में कथानक प्रवाहमयी है और भावपूर्ण है। अपने कालखण्ड में प्रयोग, संरचना और तकनीक की दृष्टि से यह रचना विलक्षण है। 'ईदगाह' कहानी की भाँति अपने सार्वत्रिक महत्त्व के लिए यह लघुकथा भी बाल-मनोविज्ञान पर एक क्लासिक, कालजयी रचना कही जा सकती है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

उपरि-विवेचित रचनाओं के शिल्प एवं सम्प्रेषण कला के आधार पर निष्कषर्त: कहा जा सकता है कि हिंदी लघुकथा में कुछ उल्लेखनीय संरचनात्मक घटक और तत्व हैं, जो इस शैली को लघ्वाकार कहानी के अन्य रूपों से अलग बनाते हैं: (1) यह अक्सर मध्य या अंत में शुरू होती है; तथा इसमें अक्सर एक अनियमित कथानक होता है, और आरम्भ, मध्य और अंत का बहुत संकीर्ण या सूक्ष्म सीमांकन होता है। (2) अधिकतर लघुकथाएँ चरित्र अथवा पात्र- केंद्रित हैं, और पात्रों/चरित्रों का परिचय प्राय: प्रारम्भिक दृश्य या वाक्य में हो जाता है। (3) कहानी की केन्द्रीय समस्या या मुद्दे का उल्लेख भी प्राय: आरंभिक पंक्तियों में ही रहता है। (4) लघुकथा का उद्देश्य प्राय: किसी पात्र या दृश्य के माध्यम से किसी विशेष सामाजिक मुद्दे अथवा सरोकार को स्वरित करना होता है। (5) लघुकथा में शब्दों की संख्या बहुत सीमित है। (6) लघुकथा का चरम पात्रों के दृष्टिकोण में परिवर्तन या पात्रों द्वारा स्व-निर्णय की त्रुटि एवं पूर्वाग्रहयुक्त अवधारणाओं के निराकरण के रूप में हो सकता है। (7) लघुकथा व्यापक रूप से समाज और मानवता के लिए एक नैतिक संदेश देती है। (8) लघुकथा में कुछ भाषायी विशेषताएँ और कौशल देखे जा सकते हैं, जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं: सरल और सीधी नित्यप्रति की भाषा का प्रयोग; कहावतों, मुहावरों और दैनिक जीवन के उदाहरणों का प्रयोग; पढ़ने और समझने में आसान शब्दावली, जो बड़े पैमाने पर पाठक वर्ग को आकर्षित करती है; कलात्मकता एवं नाटकीयता के साथ कथ्य की प्रस्तुति; दृश्यात्मकता यानी कथ्य को दर्शाने की कला, स्पष्ट अथवा सपाट रूप से वर्णन करने की नहीं (आज के शैलीगत मानदंडों के अनुसार); भावनात्मक, सनसनीखेज़, मार्मिक; तथा आलंकारिक उपकरणों का प्रयोग, जैसे व्यंग्य, कटाक्ष, हास्य, निर्देश, रूपक, उपमा, संकेत, इत्यादि। (9) विषयवस्तु के संबंध में, लघुकथा जीवन- मूल्यों, मानवीय सम्बन्धों एवं रीति-रिवाज़ों के निरूपण के साथ-साथ विभिन्न समसामयिक सामाजिक समस्याओं एवं मुद्दों पर प्रतिक्रिया प्रस्तुत करती है। ■

धरोहर

प्रेमचन्द

1-बंद दरवाज़ा

सूरज क्षितिज की गोद से निकला, बच्चा पालने से। वही स्निग्धता, वही लाली, वही ख़ुमार, वही रोशनी।

मैं बरामदे में बैठा था। बच्चे ने दरवाज़े से झाँका। मैंने मुस्कुराकर पुकारा। वह मेरी गोद में आकर बैठ गया।

उसकी शरारतें शुरू हो गईं। कभी क़लम पर हाथ बढ़ाया, कभी कागज़ पर। मैंने गोद से उतार दिया। वह मेज़ का पाया पकड़े खड़ा रहा। घर में न गया। दरवाज़ा खुला हुआ था।

एक चिड़िया फुदकती हुई आई और सामने के सहन में बैठ गई। बच्चे के लिए मनोरंजन का यह नया सामान था। वह उसकी तरफ़ लपका। चिड़िया ज़रा भी न डरी। बच्चे ने समझा अब यह परदार खिलौना हाथ आ गया। बैठकर दोनों हाथों से चिड़िया को बुलाने लगा। चिड़िया उड़ गई, निराश बच्चा रोने लगा। मगर अंदर के दरवाज़े की तरफ़ ताका भी नहीं। दरवाज़ा खुला हुआ था।

गरम हलवे की मीठी पुकार आई। बच्चे का चेहरा चाव से खिल उठा। खोंचेवाला सामने से गुज़रा। बच्चे ने मेरी तरफ़ याचना की आँखों से देखा। ज्यों-ज्यों खोंचेवाला दूर होता गया, याचना की आँखें रोष में परिवर्तित होती गईं। यहाँ तक कि जब मोड़ आ गया और खोंचेवाला आँख से ओझल हो गया तो रोष ने पुरज़ोर फ़रियाद की सूरत अख़्तियार की। मगर मैं बाज़ार की चीजें बच्चों को नहीं खाने देता। बच्चे की फ़रियाद ने मुझ पर कोई असर न किया। मैं आगे की बात सोचकर और भी तन गया। कह नहीं सकता बच्चे ने अपनी माँ की अदालत में अपील करने की जरूरत समझी या नहीं। आमतौर पर बच्चे ऐसे हालात में माँ से अपील करते हैं। शायद उसने कुछ देर के लिए अपील मुल्तवी कर दी हो। उसने दरवाज़े की तरफ रुख़ न किया। दरवाज़ा खुला हुआ था।

मैंने आँसू पोंछने के ख़्याल से अपना फाउंटेन-पेन उसके हाथ में रख दिया। बच्चे को जैसे सारे जमाने की दौलत मिल गई। उसकी सारी इंद्रियाँ इस नई समस्या को हल करने में लग गईं। एकाएक दरवाज़ा हवा से ख़ुद-ब-ख़ुद बंद हो गया। पट की आवाज़ बच्चे के कानों में आई। उसने दरवाज़े की तरफ़ देखा। उसकी वह व्यस्तता तत्क्षण लुप्त हो गई। उसने फाउंटेन-पेन को फेंक दिया और रोता हुआ दरवाज़े की तरफ़ चला; क्योंकि दरवाज़ा बंद हो गया था। ■

धरोहर

विष्णु प्रभाकर

2- पानी की जाति

बी.ए.की परीक्षा देने वह लाहौर गया था। उन दिनों स्वास्थ्य बहुत ख़राब था। सोचा, प्रसिद्ध डॉ. विश्वनाथ से मिलता चलूँ। कृष्णनगर से वे बहुत दूर रहते थे। सितम्बर का महीना था और मलेरिया उन दिनों यौवन पर था। वह भी उसके मोहचक्र में फँस गया। जिस दिन डॉ. विश्वनाथ से मिलना था, ज्वर काफ़ी तेज़ था। स्वभाव के अनुसार वह पैदल ही चल पड़ा, लेकिन मार्ग में तबीयत इतनी बिगड़ी कि चलना दूभर हो गया। प्यास के कारण, प्राण कंठ को आने लगे। आसपास देखा, मुसलमानों की बस्ती थी। कुछ दूर और चला, परन्तु अब आगे बढ़ने का अर्थ ख़तरनाक हो सकता था। साहस करके वह एक छोटी-सी दुकान में घुस गया। गांधी टोपी और धोती पहने हुए था।

दुकान के मुसलमान मालिक ने उसकी ओर देखा और तल्ख़ी से पूछा—''क्या बात है?''

जवाब देने से पहले वह बेंच पर लेट गया। बोला—''मुझे बुखार चढ़ा है। बड़े ज़ोर की प्यास लग रही है। पानी या सोडा, जो कुछ भी हो, जल्दी लाओ!''

मुस्लिम युवक ने उसे तल्ख़ी से जवाब दिया—''हम मुसलमान हैं।''

वह चिनचिनाकर बोल उठा—''तो मैं क्या करूँ?''

वह मुस्लिम युवक चौंका। बोला—''क्या तुम हिन्दू नहीं हो? हमारे हाथ का पानी पी सकोगे?''

उसने उत्तर दिया—''हिन्दू के भाई, मेरी जान निकल रही है और तुम जात की बात करते हो। जो कुछ हो, लाओ!''

युवक ने फिर एक बार उसकी ओर देखा और अन्दर जाकर सोडे की एक बोतल ले आया। वह पागलों की तरह उस पर झपटा और पीने लगा।

लेकिन इससे पहले कि पूरी बोतल पी सकता, उसे उल्टी हो गई और छोटी-सी दुकान गन्दगी से भर गई, लेकिन

उस युवक का बर्ताव अब एकदम बदल गया था। उसने उसका मुँह पोंछा, सहारा दिया और बोला—''कोई डर नहीं। अब तबीयत कुछ हल्की हो जाएगी। दो-चार मिनट इसी तरह लेटे रहो। मैं शिंकजी बना लाता हूँ।''

उसका मन शांत हो चुका था और वह सोच रहा था कि यह पानी, जो वह पी चुका है, क्या सचमुच मुसलमान पानी था? ■

धरोहर

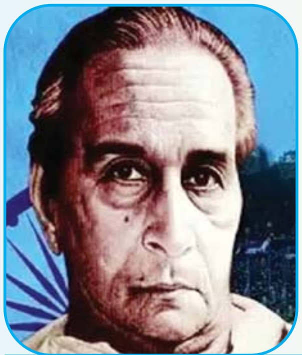

हरिशंकर परसाई

3-अश्लील पुस्तकें

शहर में ऐसा शोर था कि अश्लील साहित्य का बहुत प्रचार हो रहा है। अखबारों में समाचार और नागरिकों के पत्र छपते कि सड़कों के किनारे खुलेआम अश्लील पुस्तकें बिक रही हैं।

दस-बारह उत्साही समाज-सुधारक युवकों ने टोली बनाई और तय किया कि जहाँ भी मिलेगा, हम ऐसे साहित्य को छीन लेंगे और उसकी सार्वजनिक होली जलाएँगे।

उन्होंने एक दुकान पर छापा मारकर बीस-पच्चीस अश्लील पुस्तकें हाथों में कीं। हरेक के पास दो या तीन किताबें थीं। मुखिया ने कहा- आज तो देर हो गई। कल शाम को अखबार में सूचना देकर परसों किसी सार्वजनिक स्थान में इन्हें जलाएँगे। प्रचार करने से दूसरे लोगों पर भी असर पड़ेगा। कल शाम को सब मेरे घर पर मिलो। पुस्तकें मैं इकट्ठी अभी घर नहीं ले जा सकता। बीस-पच्चीस हैं। पिताजी और चाचाजी हैं। देख लेंगे, तो आफत हो जाएगी। ये दो-तीन किताबें तुम लोग छिपाकर घर ले जाओ। कल शाम को ले आना।

दूसरे दिन शाम को सब मिले, पर किताबें कोई नहीं लाया था। मुखिया ने कहा - किताबें दो, तो मैं इस बोरे में छिपाकर रख दूँ। फिर कल जलाने की जगह बोरा ले चलेंगे।

किताब कोई लाया नहीं था।

एक ने कहा- कल नहीं, परसों जलाना। पढ़ तो लें।

दूसरे ने कहा- अभी हम पढ़ रहे हैं। किताबों को दो-तीन दिन बाद जला देना! अब तो किताबें जब्त ही कर लीं।

उस दिन जलाने का कार्यक्रम नहीं बन सका। तीसरे दिन फिर किताबें लेकर मिलने का तय हुआ।

तीसरे दिन भी कोई किताबें नहीं लाया।

एक ने कहा- अरे यार, फादर के हाथ किताबें पड़ गईं। वे पढ़ रहे हैं।

दूसरे ने कहा- अंकिल पढ़ लें, तब ले आऊँगा।

तीसरे ने कहा- भाभी उठाकर ले गई। बोली कि दो-तीन दिनों में पढ़कर वापस कर दूँगी।

चौथे ने कहा- अरे, पड़ोस की चाची मेरी गैरहाजिरी में उठा ले गईं। पढ़ लें, तो दो-तीन दिन में जला देंगे।

अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गईं। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी जा रही हैं। ■

सहयात्री

सुकेश साहनी

1-कुत्ते वाले घर

आलीशान कोठी के गेट को खोलने के लिए उसने हाथ बढ़ाया ही था कि उसे इस इलाके के अपने से पहले वाले हॉकर द्वारा दी गई हिदायत याद आ गई। वह सतर्क हो गया। उसने पंजों के बल उचककर कोठी के कम्पाउण्ड में नजर दौड़ाई... उसे कहीं कोई कुत्ता दिखाई नहीं दिया। उसने जानबूझकर गेट खड़खड़ाया, सोचा अगर कुत्ता कहीं होगा, तो खड़खड़ाहट सुनकर भौंकेगा ही, लेकिन उसे वहाँ कुत्ते की उपस्थिति का कोई चिह्न नजर नहीं आया। वह कुछ आश्वस्त हुआ। फिर भी एहतियातन उसने बहुत दबे कदमों से बरामदे तक का रास्ता पार किया और फिर हिम्मत करके कॉलबेल का बटन दबा दिया।

दरवाजा खुला-कोठी के मालिक सामने खड़े थे। उसने अखबार का बिल उनकी ओर बढ़ा दिया।

"क्या अखबार बेचने का काम सब चोर-उचक्कों ने सम्हाल लिया है?" एकाएक उन्होंने बिल को घूरते हुए उससे कहा।

"जी!" उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

"ज... जी मत करो..." -उन्होंने आँखें निकालकर कहा- "पच्चीस दिन भी अखबार नहीं पढ़ा और बिल दो महीने का! यहाँ हराम के पैसे समझे हैं क्या?"

"नहीं साहब, आपको गलतफहमी हो रही है। मुझे आपके यहाँ अखबार डालते हुए पूरे दो महीने हो गए... आप मेरी डायरी देख लीजिए।"

"मैं तुम लोगों की नस-नस से वाकिफ हूँ... ये नौटंकी कहीं और दिखाना, समझे? अपने पच्चीस दिन के पैसे पकड़ो और दफा हो जाओ... आगे से यहाँ अखबार डालने की जरूरत नहीं है।" कहते हुए उन्होंने कुछ नोट उसके मुँह पर फेंक दिए।

"साहब, जबान सम्हालकर बात कीजिए... अपनी मेहनत के पैसे माँग रहा हूँ-कोई खैरात नहीं।" उसे गुस्सा आ गया।

"अबे तेरी ये मजाल!" उन्होंने हाथापाई की तैयारी में अपने कुरते की आस्तीनें ऊपर चढ़ा लीं और चिल्लाए-"अरे ओ रामू...शंकर, पकड़ लो साले...मादर...को। यही हरामी बरामदे का पंखा चुराकर ले गया है..."

वह डर गया। गुस्से के बावजूद उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह तेजी से कोठी के बाहर आ गया। गुस्से से उसकी मुट्ठियाँ भिंची हुई थीं। सामने की दूसरी कोठी के गेट पर 'कुत्ते से सावधान' की तख्ती लगी हुई थी। उसकी इच्छा हुई कि वहाँ से तख्ती को उखाड़कर इस कुत्ते की कोठी पर लगा दे।

2-अनुताप

''बाबूजी आइए---मैं पहुँचाए देता हूँ।'' एक रिक्शेवाले ने उसके नज़दीक आकर कहा।

''असलम अब नहीं आएगा।''

''क्या हुआ उसको?'' रिक्शे में बैठते हुए उसने लापरवाही से पूछा। पिछले चार-पाँच दिनों से असलम ही उसे दफ्तर पहुँचाता रहा था।

''बाबूजी, असलम नहीं रहा---''

''क्या?'' उसे शॉक-सा लगा, ''कल तो भला चंगा था।''

''उसके दोनों गुर्दों में खराबी थी, डॉक्टर ने रिक्शा चलाने से मना कर रखा था,'' उसकी आवाज़ में गहरी उदासी थी, ''कल आपको दफ्तर पहुँचाकर लौटा, तो पेशाब बंद हो गया था, अस्पताल ले जाते समय उसने रास्ते में ही दम तोड़ दिया था--''

आगे वह कुछ नहीं सुन सका। एक सन्नाटे ने उसे अपने आगोश में ले लिया---कल की घटना उसकी आँखों के आगे सजीव हो उठी। रिक्शा नटराज टॉकिज़ पार कर बड़े डाकखाने की ओर जा रहा था। रिक्शा चलाते हुए असलम धीरे-धीरे कराह रहा था। बीच-बीच में एक हाथ से पेट पकड़ लेता था। सामने डाक बँगले तक चढ़ाई ही चढ़ाई थी। एकबारगी उसकी इच्छा हुई थी कि रिक्शे से उतर जाए। अगले ही क्षण उसने खुद को समझाया था-'रोज का मामला है---कब तक उतरता रहेगा---ये लोग नाटक भी खूब कर लेते हैं, इनके साथ हमदर्दी जताना बेवकूफी होगी--- अनाप-शनाप पैसे माँगते हैं, कुछ कहो तो सरेआम इज़्ज़त उतारने पर आमादा हो जाते हैं---।' असलम सरेआम रिक्शे से उतर पड़ा था, दाहिना हाथ गद्दी पर जमाकर चढ़ाई पर रिक्शा खींच रहा था। वह बुरी तरह हाँफ रहा था, गंजे सिर पर पसीने की नन्ही-नन्ही बूँदें दिखाई देने लगी थीं---।

किसी कार के हार्न से चौंककर वह वर्तमान में आ गया। रिक्शा तेजी से नटराज से डाक बँगले वाली चढ़ाई की ओर बढ़ रहा था।

''रुको!'' एकाएक उसने रिक्शे वाले से कहा और रिक्शे के धीरे होते ही उतर पड़ा। रिक्शे वाला बहुत मज़बूत कद काठी का था। उसके लिए यह चढ़ाई कोई खास मायने नहीं रखती थी। उसने हैरानी से उसकी ओर देखा। वह किसी अपराधी की भाँति सिर झुकाए रिक्शे के साथ-साथ चल रहा था।

3-आखिरी तारीख

''वर्माजी!'' उसने पुकारा।

बड़े बाबू की मुद्रा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनकी आँखें बंद थीं और दाँतों के बीच एक बीड़ी दबी हुई थी। ऐश-ट्रे माचिस की तीलियाँ और बीड़ी के अधजले टुकड़ों से भरी पड़ी थी।

सुरेश को आश्चर्य हुआ। दफ़्तर के दूसरे भागों से भी लड़ने-झगड़ने की आवाज़ें आ रही थीं। बड़े बाबू की अपरिवर्तित मुद्रा देखकर वह सिर से पैर तक सुलग उठा। उसकी इच्छा हुई एक मुक्का उनके जबड़े पर जड़ दे।

''वर्माजी, आपने आज बुलाया था!'' अबकी उसने ऊँची आवाज में कहा।

बड़े बाबू ने अपनी लाल सुर्ख आँखें खोल दीं। सुरेश को याद आया---पहली दफा वह जब यहाँ आया था तो बड़े बाबू के व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ था। तब बड़े बाबू ने आदर के साथ उसे बिठाया था और उसके पिता की फाइल ढूँढकर सारे कागज़ खुद ही तैयार कर दिए थे। दफ्तर के लोग भी एकाग्रचित्त हो काम कर रहे थे।

बड़े बाबू अभी भी उसकी उपस्थिति की परवाह किए बिना टेबल कैलेंडर पर एक तारीख के इर्द-गिर्द पेन से गोला खींच रहे थे। उसने बड़े बाबू द्वारा दायरे में तारीख को ध्यान से देखा तो उसे ध्यान आया, आज महीने का आखिरी दिन है और पिछली दफा जब वह यहाँ आया था, तब महीने का प्रथम सप्ताह था। बड़े बाबू के तारीख पर चलते हाथ से ऐसा लग रहा था मानो वे इकतीस तारीख को ठेलकर आज ही पहली तारीख पर ले आना चाहते थे।

एकाएक उसका ध्यान आज सुबह घर के खर्चे को लेकर पत्नी से हुए झगड़े की तरफ चला गया। पत्नी के प्रति अपने क्रूर व्यवहार के बारे में सोचकर उसे हैरानी हुई। अब उसके मन में बड़े बाबू के प्रति गुस्सा नहीं था; बल्कि उसे अपनी पत्नी के प्रति की गई ज्यादती पर पछतावा हुआ। वह कार्यालय से बाहर आ गया।

4-आधी दुनिया

...साड़ी पहनकर दिखाओ, लूज फिटिंग के सूट में फिगर्स का पता ही नहीं चलता...चलकर दिखाओ...लम्बाई? ऐसे नहीं-बिना सैंडिल के चाहिए...मेकअप तो नहीं किया है न? ...पार्क में चलो, चेहरे का रंग खुले में ही पता चलता है...बड़ी बहन की शादी में क्या दिया था? ...क्या-क्या पका लेती हो? ...घर सम्हालना आता है? आज के समय में नौकर-मेहरी रखना 'सेफ' नहीं है।

... 'जयमाल' के समय सूट पहनना, लहँगा-चोली नहीं चलेगा...डार्लिंग, ये देहाती औरतों वाला अंदाज़ छोड़ दो...आज की रात हम जो कहेंगे, करना होगा...हमसे कुछ मत छिपाना...शादी से पहले किसी से प्यार किया था? ...कितना नमक झोंक दिया है सब्जी में! ...स्वीट हार्ट! इधर आओ, हमारे करीब...दिनभर की थकान हम अभी दूर किए देते हैं! ...चूमने का ये अंग्रेज़ी अंदाज कहाँ से सीखा? तुम तो छिपी रुस्तम निकली! ...कैसा खाना बनाया है? देखते ही भूख मर गई।

...खिड़की पर मत खड़ी हुआ करो...बेमतलब खी-खी मत किया करो! ...तुम्हारे घर वालों में ज़रा भी अक्ल नहीं है, इस कूड़े, -कबाड़ की जगह कार ही दे देते। ...अक्ल से बिल्कुल पैदल हो! प्यार करने के तरीके इन विदेशी मेमों से सीखो। ...कितनी बार कहा है बेवक्त घर का रोना मत रोया करो, सारा मजा किरकिरा हो जाता है। ...मुझसे पहले तुम कैसे सो सकती हो? ...दोस्त आएँ, तो उन्हें चाय-पानी के लिए पूछा करो। ...दोस्तों के सामने मुँह उठाए क्यों चली आती हो? उनसे ज़्यादा हँस-हँसकर बात मत किया करो।

...बहुत फालतू-खर्च करने लगी हो! ...तुम्हारे खानदान में किसी ने बेटा जना है, जो तुम जनोगी! मैं तो फँस गया! ...दिन-रात मायकेवालों का जाप मत किया करो। ...किसे चाय-पानी के लिए पूछना है किसे नहीं, ये सब भी सिखाना पड़ेगा तुम्हें? ...तुम्हारी बहन की शादी में बहुत माल खर्च कर रहे हैं, हमें तो बहुत सस्ते में ही निबटा दिया था बुढ़ऊ ने।

...आए दिन पर्स उठाकर कहाँ चल देती हो? घर का नाम मत डुबो देना! ...बेटियों को चौपट करोगी तुम! भगवान के लिए उन्हें अपने जैसा मत बनाना। ...रोजाना माँ को देखने मत चल दिया करो। बुढ़िया के प्राण इतनी आसानी से नहीं निकलने वाले, अब 'खबर' आने पर ही जाना। ...दिन-रात घुटनों को लेकर 'हाय-हाय' करना छोड़ दो। घर में घुसते ही मूड खराब हो जाता है।

...कितनी ठंडी होती जा रही हो दिन-ब-दिन! ...मोहल्ले की इन दो टके की औरतों से बात मत किया करो...अब ये रोना धोना बंद करो! माँ के मरने पर नहीं पहुँच सकी तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा। ...ये चोंचले मुझे मत दिखाओ! ...ज्यादा अगर-मगर मत करो... शक्की बुढ़िया की तरह 'बिहेव' मत करो... दिमाग का इलाज कराओ...सिर मत खाओ...ज्यादा चीं-चपड़ मत करो! मुझसे ऊँची आवाज में बात मत करना...तुम्हारी ये मजाल! ...मुझे आँखें दिखाती हो! निकलो...अभी निकलो 'मेरे' घर से।

5- पाठ

पाखी को उसके घर जाकर फिज़िक्स की ट्यूशन पढ़ाते मुझे एक साल और पाँच महीने हो गए थे। पंद्रह-सोलह वर्षीया खूबसूरत, मासूम-सी पाखी बहुत ही मेधावी थी। उसके पापा बचपन में ही एक हादसे में गुजर गए थे। तब से उसकी मम्मी का तो जैसे एक ही लक्ष्य था-अपनी बेटी को पढ़ा-लिखाकर काबिल बनाना। पाखी की माँ दूसरों से अलग थी,एक तो मेरा बहुत सम्मान करती थीं, दूसरे ट्यूशन के समय बेमतलब आस-पास मँडराती नहीं थीं।

पिछले कुछ दिनों से मैं पाखी में कुछ बदलाव महसूस कर रहा था,जब मेरा ध्यान किताब में होता, तो वह अपलक मेरी ओर देखने लगती।

''सर, आपकी शादी हो गई?''-एक दिन अचानक उसने पूछ लिया।

''क्यों?'' मुझे हैरानी हुई, वह ट्यूशन के दौरान पर्सनल बातें नहीं किया करती थी।

''वैसे ही ...जानना है'' - उसने भोलेपन से जवाब दिया।

''नहीं ,'' मैंने बताया, ''मेरी दो छोटी बहनें हैं, उनकी शादी हो जाएगी, तब मेरी होगी।''

''सर! आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।'' उसने शरारत से मुस्कराते हुए कई बार पलकें झपकाईं।

मुझसे उम्र में आधी पाखी की इस हरकत से मेरे होश उड़ गए,मुझे उससे ऐसी उम्मीद नहीं थी,ट्यूशन सर्किल में दूसरे कई ट्यूटर्स के किस्से याद आ गए, जो वे चटखारे ले लेकर एक दूसरे से शेयर किया करते थे।

''पाखी! पढाई में कंसन्ट्रेट करो'' मैंने उसकी बात को नज़रअंदाज़ करते हुए कहा था।

घर लौटने पर भी पाखी का 'आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं' दिमाग से निकल ही नहीं रहा था। बहुत देर तक नींद नहीं आई, तो नेट पर 'टीनेज लव' के बारे में सर्च करने लगा, फ़िल्मी दुनिया और दूसरे सैकड़ों उदाहरण पलक झपकते ही सामने आ गए ,जहाँ टीनेजर्स लड़कियाँ अपनी उम्र से दुगनी उम्र के पुरुषों से प्यार करती थीं।बेरोजगारी के बुरे दौर से गुजरते हुए पहली बार मैं खुद को किसी फिल्मी हीरो जैसा महसूस कर रहा था।

मैं ट्यूशन देने पहुँचा, तो वह मुझे बहुत गंभीर लगी। उसने बताया कि ममा बाजार गईं हैं,उसे आज मुझसे अपने मन की बात करनी है, जो ममा के सामने नहीं कर पाएगी।

इस स्थिति की मैंने कल्पना भी नहीं की थी। मेरा दिल जोरों से धड़कने लगा।अभी मैं सोच-विचार में पड़ा ही था कि उसने मेरा दाहिना हाथ पकड़ लिया और मुझे अपने कमरे की ओर खींचकर ले जाने लगी।

अगले ही क्षण हम आदमकद आईने के सामने थे,वह आगे थी,उसके पीछे मैं था, मेरा दाहिना हाथ अभी भी उसके हाथ में था। अब वह एकटक मेरी आँखों में झाँक रही थी। मेरे देखते ही देखते उसकी आँखें डब- डब करने लगीं, वह रुँधी हुई आवाज़ में बोली, ''सर,आइ लव यू!!''

उसके हाथ में मेरा हाथ थरथरा गया।

उसकी बात अभी पूरी नहीं हुई थी, बोली, ''इस जन्म में मुझे डैडी का प्यार नहीं मिला। मैं चाहती हूँ अगले जन्म में मुझे आप जैसे डैड मिलें!!'' -डब-डब करती आँखों से आँसू बह निकले।

कहकर वह आईने के फ्रेम से बाहर हो गई।

कमरे में मैं अकेला खड़ा था, पर अब आईना मुझे देखे जा रहा था।

6- बेटी का ख़त

बेटी का खत पढ़ते ही बूढ़े बाप के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

''खैरियत तो है न?'' पत्नी ने पूछा, ''क्या लिखा है?''

''सब कुशल-मंगल है,'' आवाज में कंपन था।

''फिर पढ़ते ही घबरा क्यों गए?'' पत्नी बोली, फिर उसके हाथ से चिट्ठी लेकर खुद पढ़ने लगी।

खत खैरियत वाला ही था। बेटी ने माँ-बाप की कुशलता की कामना करते हुए अपनी राजी-खुशी लिखी थी, अंत में लिखा था-राजू भइया की बहुत याद आती है। पत्र पढ़ने के बाद पत्नी निश्चिंत होकर रसोई में चली गई।

जब लौटी तो देखा पति अभी भी उस खत को एकटक घूरे जा रहा है, चेहरा ऐसा मानो किसी ने सारा खून निचोड़ लिया हो।

पत्नी को देखते ही उसने सकपकाकर खत एक ओर रख दिया। सहज होने का असफल प्रयास करते हुए बोला, ''सोचता हूँ, कल रजनी बेटी के पास हो ही आऊँ।''

पत्नी ने उसके पीले उदास चेहरे की ओर ध्यान से देखा, फिर रुँधे गले से बोली, ''आखिर हुआ क्या है? अभी कल ही तो दशहरे पर बेटी के यहाँ जाने की बात कर रहे थे, फिर अचानक ऐसा क्या जो...तुम्हें मेरी सौं जो कुछ भी छिपाओ!''

इस बार वह पत्नी से आँख नहीं चुरा सका, भर्राई आवाज में बोला, ''पिछली दफा रजनी ने मुझे बताया था कि ससुराल वाले उसकी लिखी कोई चिट्ठी बिना पढ़े पोस्ट नहीं होने देते, तब मैंने उससे कहा था कि भविष्य में अगर वे लोग उसे तंग करें और वह हमें बुलाना चाहे तो खत में लिख दे-राजू भइया की बहुत याद आती है। इस बार उसने खत में यही तो लिखा है।'' कहते हुए बूढ़े बाप की आँखें छलछला आईं। ■

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

1- लौह-द्वार

रात का अन्तिम प्रहर। नगर के प्रवेश-द्वार पर थपथपाहट का स्वर उभरा। द्वारपाल अर्धनिद्रा से हड़ाबड़ाकर जागा। फिर जोर की थपथपाहट।

''अबे कौन आ मरा इस समय!''

''मैं हूँ हुजूर, आम आदमी!''

''यह कौन -सा समय है फ़रियाद करने का''-लौहद्वार को बाहर की ओर धकेलकर खोलते हुए द्वारपाल झुँझलाया।

''हुजूर, सत्यप्रकाश को शन्तिप्रिय ने मार दिया।''- आम आदमी भयभीत स्वर में बोला।

''क्यों मार दिया। सत्यप्रकाश ने कुछ ग़लत किया होगा। जो मर गया, उसको भगवान भी जीवित नहीं कर सकता। यहाँ क्यों आए हो?''

''न्याय मंत्री जी को सूचित करना था, ताकि वे शान्तिप्रिय के पागलपन पर रोक लगा सकें।''

''वे अभी सो रहे होंगे। तुम्हें इतनी जल्दी नहीं आना था।''

''शान्तिप्रिय पर शैतान सवार हो गया है। वह भीड़ लेकर उसके परिवार तक को मारने पर तुला है। उसको न रोका गया, तो अनर्थ हो जाएगा।''- आम आदमी गिड़गिड़ाया।

''इसमें मंत्री जी क्या कर सकते हैं। इस तरह कोई सीधे माननीय मंत्री जी के पास आता है क्या? क्यों मार दिया? सत्यप्रकाश ने कुछ ग़लत किया होगा।'' -द्वारपाल ने उपेक्षा से कहा।

''धरती गोल है, इतना ही तो बोला था।''

''क्या ज़रूरत थी यह सब बोलने की। इस तरह के बयान से शान्ति भंग होती है।''

''आप मंत्री महोदय को खबर कर दीजिए।''

''इस समय वे फ़रियाद नहीं सुनते।'' द्वारपाल ने टोका।

''विशेष परिस्थितियों में सुनते हैं, अभी हाल ही में भोर में उन्होंने फ़रियाद सुनी थी।''

''आप ठहरे आम आदमी। आपकी पहुँच आपके मुहल्ले में भी नहीं। अगर होती, तो यह हादसा नहीं होता। आपको कोई क्यों सुनेगा? आपकी पहुँच किसी ऊपरवाले तक है, जो मंत्री जी से आपकी सिफ़ारिश कर दे।''

''मेरी पहुँच किसी ऊपरवाले तक नहीं है। मंत्री जी स्वत: संज्ञान भी तो ले सकते हैं।''

''ठीक है, घर में जाकर बैठो। स्वत: संज्ञान लेने की प्रतीक्षा करो।''

द्वारपाल ने चीखते हुए लौह- द्वार को बलपूर्वक बन्द कर दिया।

2-नवजन्मा

जिलेसिंह शहर से वापस आया तो आँगन में पैर रखते ही उसे अजीब-सा सन्नाटा पसरा हुआ लगा।

दादी ने ऐनक नाक पर ठीक से रखते हुए उदासी-भरी आवाज़ में कहा- 'जिल्ले! तेरा तो इभी से सिर बँध ग्या रे। छोरी हुई है!'

जिलेसिंह के माथे पर एक लकीर खिंच गई।

'भाई लड़का होता तो ज़्यादा नेग मिलता। मेरा भी नेग मारा गया'- बहन फूलमती ने मुँह बनाया-'पहला जापा था। सोचा था-खूब मिलेगा।'

जिले सिंह का चेहरा तन गया। माथे पर दूसरी लकीर भी उभर आई।

माँ कुछ नहीं बोली। उसकी चुप्पी और अधिक बोल रही थी। जैसे कह रही हो-जूतियाँ घिस जाएँगी ढंग का लड़का ढूँढ़ने में। पता नहीं किस निकम्मे के पैरों में पगड़ी रखनी पड़ जाए।

तमतमाया जिलेसिंह मनदीप के कमरे में घुसा। बाहर की आवाज़ें वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं। नवजात कन्या की आँखें मुँदी हुई थीं। पति को सामने देखकर मनदीप ने डबडबाई आँखें पोंछते हुए अपना मुँह अपराध भाव से दूसरी ओर घुमा लिया।

जिलेसिंह तीर की तरह लौटा और लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चौपाल वाली गली की ओर मुड़ गया।

'सुबह का गया अभी शहर से आया था। तुम दोनों को क्या ज़रूरत थी इस तरह बोलने की?' माँ भुनभनाई। घर में और भी गहरी चुप्पी छा गई।

कुछ ही देर में जिलेसिंह लौट आया। उसके पीछे-पीछे सन्तु ढोलिया गले में ढोल लटकाए आँगन के बीचों-बीच आ खड़ा हुआ।

'बजाओ!' जिलेसिंह की भारी भरकम आवाज़ गूँजी.

तिड़क-तिड़-तिड़-तिड़ धुम्म, तिड़क धुम्म्म! ढोल बजा।

मुहल्ले वाले एक साथ चौंक पड़े। जिलेसिंह ने अल्मारी से अपनी तुर्रेदार पगड़ी निकाली; जिसे वह-वह शादी-ब्याह या बैसाखी जैसे मौके पर ही बाँधता था। ढोल की गिड़गिड़ी पर उसने पूरे जोश से नाचते हुए आँगन के तीन-चार चक्कर काटे। जेब से सौ का नोट निकाला और मनदीप के कमरे में जाकर नवजात के ऊपर वार-फेर की और उसकी अधमुँदी आँखों को हलके-से छुआ। पति के चेहरे पर नज़र पड़ते ही मनदीप की आँखों के सामने जैसे उजाले का सैलाब उमड़ पड़ा हो। उसने छलकते आँसुओं को इस बार नहीं पोंछा।

बाहर आकर जिलेसिंह ने वह नोट सन्तु ढोलिया को थमा दिया।

सन्तु और जोर से ढोल बजाने लगा-तिड़-तिड़-तिड़ तिड़क-धुम्म, तिड़क धुम्म्म! तिड़क धुम्म्म! तिड़क धुम्म्म!

3-ऊँचाई

पिताजी के अचानक आ धमकने से पत्नी तमतमा उठी-- ''लगता है, बूढ़े को पैसों की ज़रूरत आ पड़ी है, वर्ना यहाँ कौन आनेवाला था! अपने पेट का गड्ढा भरता नहीं, घरवालों का कहाँ से भरोगे?'' मैं नज़रें बचाकर दूसरी ओर देखने लगा। पिताजी नल पर हाथ-मुँह धोकर सफ़र की थकान दूर कर रहे थे। इस बार मेरा हाथ कुछ ज्यादा ही तंग हो गया। बड़े बेटे का जूता मुँह बा चुका है। वह स्कूल जाते वक्त रोज भुनभुनाता है। पत्नी के इलाज के लिए पूरी दवाइयाँ नहीं खरीदी जा सकीं। बाबूजी को भी अभी आना था।

घर में बोझिल चुप्पी पसरी हुई थी। खाना

खा चुकने पर पिताजी ने मुझे पास बैठने का इशारा किया। मैं शंकित था कि कोई आर्थिक समस्या लेकर आए होंगे। पिताजी कुर्सी पर उकड़ू बैठ गए। एकदम बेफिक्र। ''सुनो'' कहकर उन्होंने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा। मैं साँस रोककर उनके मुँह की ओर देखने लगा। रोम-रोम कान बनकर अगला वाक्य सुनने के लिए चौकन्ना था।

वे बोले, ''खेती के काम में घड़ी भर भी फुर्सत नहीं मिलती। इस बखत काम का जोर है। रात की गाड़ी से वापस जाऊँगा। तीन महीने से तुम्हारी कोई चिट्ठी तक नहीं मिली। जब तुम परेशान होते हो, तभी ऐसा करते हो।'' उन्होंने जेब से सौ-सौ के दस नोट निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिए, ''रख लो। तुम्हारे काम आएँगे। धान की फसल अच्छी हो गई थी। घर में कोई दिक्कत नहीं है। तुम बहुत कमजोर लग रहे हो। ढंग से खाया-पिया करो। बहू का भी ध्यान रखो।''

मैं कुछ नहीं बोल पाया। शब्द जैसे मेरे हलक में फँसकर रह गए हों। मैं कुछ कहता इससे पूर्व ही पिताजी ने प्यार से डाँटा, ''ले लो। बहुत बड़े हो गए हो क्या?''

''नहीं तो।'' मैंने हाथ बढ़ाया। पिताजी ने नोट मेरी हथेली पर रख दिए। बरसों पहले पिताजी मुझे स्कूल भेजने के लिए इसी तरह हथेली पर अठन्नी टिका देते थे, पर तब मेरी नज़रें आज की तरह झुकी नहीं होती थीं। ■

श्याम सुन्दर अग्रवाल

1- माँ का कमरा

छोटे-से पुश्तैनी मकान में रह रही बुज़ुर्ग बसंती को दूर शहर में रहते बेटे का पत्र मिला- 'माँ, मेरी तरक्की हो गई है। कंपनी की ओर से मुझे बहुत बड़ी कोठी मिली है, रहने को। अब तो तुम्हें मेरे पास शहर में आकर रहना ही होगा। यहाँ तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी।

पड़ोसन रेशमा को पता चला तो वह बोली, ''अरी रहने दे शहर जाने को। शहर में बहू-बेटे के पास रहकर बहुत दुर्गति होती है। वह करमो गई थी न, अब पछता रही है, रोती है। नौकरों वाला कमरा दिया है, रहने को और नौकरानी की तरह ही रखते हैं। न वक्त से रोटी, न चाय। कुत्ते से भी बुरी जून है।''

अगले ही दिन बेटा कार लेकर आ गया। बेटे की ज़िद के आगे बसंती की एक न चली। 'जो होगा देखा जावेगा' की सोच के साथ बसंती अपने थोड़े-से सामान के साथ कार में बैठ गई।

लंबे सफर के बाद कार एक बड़ी कोठी के सामने जाकर रुकी।

''एक ज़रूरी काम है माँ, मुझे अभी जाना होगा।''- कह, बेटा माँ को नौकर के हवाले कर गया। बहू पहले ही काम पर जा चुकी थी और बच्चे स्कूल।

बसंती कोठी देखने लगी। तीन कमरों में डबल-बैड लगे थे। एक कमरे में बहुत बढ़िया सोफा-सैट था। एक कमरा बहू-बेटे का होगा, दूसरा बच्चों का और तीसरा मेहमानों के लिए, उसने सोचा। पिछवाड़े में नौकरों के लिए बने कमरे भी वह देख आई। कमरे छोटे थे, पर ठीक थे। उसने सोचा, उसकी गुज़र हो जाएगी। बस बहू-बेटा और बच्चे प्यार से बोल लें और दो वक्त की रोटी मिल जाए। उसे और क्या चाहिए।

नौकर ने एक बार उसका सामान बरामदे के साथ वाले कमरे में टिका दिया। कमरा क्या था, स्वर्ग लगता था- डबल-बैड बिछा था, गुस्लखाना भी साथ था। टी.वी. भी पड़ा था और टेपरिकार्डर भी। दो कुर्सियाँ भी पड़ी थीं। बसंती सोचने लगी- काश! उसे भी कभी ऐसे कमरे में रहने का मौका मिलता। वह डरती-डरती बैड पर लेट गई। बहुत नर्म गद्दे थे। उसे एक लोककथा की नौकरानी की तरह नींद ही न आ जाए और बहू आकर उसे डाँटे, सोचकर वह उठ खड़ी हुई।

शाम को जब बेटा घर आया तो बसंती बोली, ''बेटा, मेरा सामान मेरे कमरे में रखवा देता।''

बेटा हैरान हुआ, ''माँ, तेरा सामान तेरे कमरे में ही तो रखा है नौकर ने।''

बसंती आश्चर्यचकित रह गई, ''मेरा कमरा! यह मेरा कमरा!! डबल-बैड वाला...!''

''हाँ माँ, जब दीदी आती है, तो तेरे पास सोना ही पसंद करती है। और तेरे पोता-पोती भी सो जाया करेंगे तेरे साथ। तू टी.वी. देख, भजन सुन। कुछ और चाहिए, तो बेझिझक बता देना।'' उसे आलिंगन में ले बेटे ने कहा तो बसंती की आँखों में आँसू आ गए।

2- रिश्ते

''सरिता दीदी का फोन था, दोपहर बाद आ रही हैं।''- कृष्णा ने सूचना दी।

''किसलिए? कुछ कह रही थीं क्या?''- राजेश ने पूछा।

''बधाई दे रही थीं।'' कृष्णा ने बताया।

''किस बात की?'' राजेश को जानने की उत्सुकता हुई।

''साक्षी का रिश्ता तय कर दिया है, शादी भी इसी माह है।''

''साक्षी का रिश्ता हो गया! चलो, अच्छी बात है'' -राजेश ने ठंडे-से स्वर में कहा।

''दीदी, भात के लिए न्योतने आ रही हैं।''

बहन के आने पर राजेश का चेहरा निस्तेज-सा था। कृष्णा चाय-पान ले आई। ननद से घर-परिवार की बातें भी पूछती रही। चाय-पान के

बाद सरिता बोली, ''भैया! तुम्हारी भानजी की शादी इसी माह की तीस तारीख की तय हो गई है। भाभी व बच्चों सहित पहुँचना है...और तुम्हारे जीजा जी ने कहा है, भात देते वक्त उनकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखना...तुम्हारी बहन की इज्जत का भी सवाल है भैया।''

बहुत देर से खामोश बैठे राजेश ने आखिर चुप्पी तोड़ी, ''दीदी, बात ऐसी है कि आपको मेरी हालत दिख ही रही है। किराए के मकान में हूँ। तनख़ाह में तो गुज़ारा भी बड़ी कठिनाई से होता है। बच्चों को ढंग से पढ़ा भी नहीं पा रहा। ऐसे में मैं...।''

''भैया! सामाजिक रीति- रिवाजों का निर्वाह तो करना ही पड़ता है। ऐसे वक्त तो भाई कर्ज लेकर भी अपना और बहन दोनों का मान रखते हैं...।''

राजेश को जैसे बड़ी शक्ति मिल गई, बोला, ''दीदी, पिता जी जो छोटा-सा मकान छोड़ गए थे, उसमें से भी तुमने अपना हिस्सा ले लिया, तभी आज किराए के मकान में बैठा हूँ...।''

''भैया, मैंने तो कानून के अनुसार ही अपना हिस्सा लिया''- सरिता ने राजेश की बात बीच में ही काटते हुए कहा, ''तुम्हारे हिस्से का तो कुछ छीना नहीं।''

''दीदी!...'' सरिता की तिलमिलाहट भरी दलील सुनकर भी राजेश संयत स्वर में बोला, ''जिस कानून के तहत आपने अपना हिस्सा लिया, उसमें यह तो कहीं नहीं लिखा कि मामा ने भांजे या भांजी की शादी में भात देना ही देना है!''

''भाई, ये तो सामाजिक रीति-रिवाज है...!'' सरिता हक जमाती-सी बोली।

''दीदी, पारिवारिक रिश्तों में सरकार और समाज दोनों के कानून एक साथ नहीं चलते। उनमें से एक को ही चुनना होता है। आपने सरकार का कानून चुना, इसलिए समाज के रीति-रिवाज निभाने की दुहाई देने का कोई हक नहीं रह गया आपको...।''

सरिता कुछ देर सोचती सन्न-सी बैठी रही; फिर हताश-सी उठकर चल दी। ■

कमलेश भारतीय

1- मिस फ़िट

अचानक वह एक ऊँचे पद पहुँच गया। उसे उच्च पद के मुताबिक बड़ी गाड़ी भी मिली और सरकारी बंगला भी! वह हैरान हुआ यह देखकर कि उसका ऑफिस कुछ कदमों की दूरी पर ही है। वह सुबह ड्राइवर को गाड़ी के लिए मना कर पैदल ही मस्ती में ऑफिस पहुँच गया! सबके सब चौंक गए और दूसरे अधिकारी समझाने आए कि ऐसे ऑफिस थोड़े आते हैं।

– फिर कैसे आते हैं?

– ऑफिस की गाड़ी पर! आप तो सारा डेकोरम ही तहस- नहस कर दोगे!.

दूसरे दिन वह ऑफिशियल गाड़ी में तो आया; लेकिन इससे पहले कि ड्राइवर उतर कर आए और गाड़ी का दरवाजा खोले, वह अपने आप ही दरवाजा खोलकर उतर गया!

फिर साथी अधिकारियों ने हल्ला मचा दिया और ऑफिस में आकर समझाने लगे कि ड्राइवर को गाड़ी का दरवाजा खोलने की परंपरा निभाने दीजिए, नहीं तो ये सिर पर चढ़ जाएँगे!

वह फिर अनाड़ी ही साबित करार दिया गया!

फिर वह एक क्लब में दोपहर का खाना खाने गया और ड्राइवर को सामने बिठाकर लंच का ऑर्डर दे दिया!.

तभी फोन की घंटी बजी, ऐसी बात सुनने को मिली, जैसे कानों में कोई गर्म गर्म तेल डाल गया हो!

फोन क्लब के प्रेजिडेंट का था, जो कह रहा था कि आप कितने स्ट्रगल के बाद इस पद पर पहुँचे हो और ड्राइवर यहाँ अलाउड नहीं हैं, आप इसे बाहर बिठाकर लंच करवा सकते हो!

ओह! शिमला का मॉल रोड याद आ गया, पता नहीं क्यों?

वहाँ कभी लिखा रहता था - डाग्स एंड इंडियन्स आर नाट अलाउड!

अब वह सोचता जा रहा है कि कैसा विहेव करे! कहीं वह मिसफिट तो नहीं?

2- कुछ खास नहीं

मैं दाँत के दर्द के कारण निढाल लेटा था। दिन भर। पत्नी की पीठ में भी दर्द था। कह रही थी -बुढ़ापे के लक्षण दिखने लगे हैं।

शाम को बेटी आई। पत्नी ने पैसे उठाए और दवा लेने चली। मैंने याद दिलाया- अपनी दवा भी लेते आना।

दवा लेकर लौटी। गर्मी में हाँफती हुई। पानी का गिलास लाई और दवा खिला दी।

मैंने पूछा-अपनी दवा ले आई?

बोली-नहीं।

-क्यों? मैंने पूछा।

-कुछ खास दर्द नहीं।

मैं नए जमाने में भी अपनी पुरानी दुल्हन को प्यार से ताकता रह गया। ■

डॉ. सुषमा गुप्ता

1- राजनीति

''अबे तूने ये क्या तमाशा लगाया है। हिंदुस्तान मुर्दाबाद, पाकिस्तान जिंदाबाद?''- राहुल ने युनिवर्सिटी कैम्पस में भीड़ देख मोहन से पूछा।

मोहन फुसफुसाकर बोला- ''कुछ नहीं यार तू तो जानता है, मुझे राजनीति में जाना है। कई

साल से देशभक्ति के नारे लगा रहा हूँ। कोई ध्यान ही नहीं देता। आज ज़रा पाकिस्तान जिंदाबाद क्या बोला, तू सामने भीड़ देख और तो और मीडिया वाले भी जमघट लगाए हैं।''

''अबे गधे जेल जाएगा।''

''गधा होगा तू। इतनी-सी बात तेरी समझ नहीं आ रही, जेल जाते ही हीरो बन जाऊँगा। सब अखबारों में छा जाऊँगा। फिर अपनी बात से पलट जाऊँगा। बेरोजगारी की झुँझलाहट का जामा पहनाऊँगा और किसी न किसी बड़ी पार्टी का टिकट पा जाऊँगा। अब हट साइड में। टाइम मत खराब कर।

हिंदुस्तान मुर्दाबाद, पाकिस्तान जिंदाबाद।''

2-संवेदनाओं का डिजिटल संस्करण

2 मार्च 2021

पिताजी बहुत बीमार हैं। आप सभी की दुआओं की बहुत ज़रूरत है।

(अस्पताल में लेटे बीमार पिता जी की फोटो के साथ उसने फेसबुक पर स्टेटस अपडेट किया।)

3 मार्च 2021

पिताजी की हालत लगातार बिगड़ रही है। तन, मन, धन से जितना कर सकता हूँ, सब कर रहा हूँ।

(इस बार उसने अपने थके निराश चेहरे की फोटो के साथ स्टेटस अपडेट किया।)

5 मार्च 2021

पिताजी नहीं रहे। मैं अपनी सब कोशिशें करके भी हार गया। मेरा संसार लुट गया।

(श्मशान से पिता की चिता के आगे अपने आँसुओं से भरे चेहरे के साथ उसने स्टेटस एक बार फिर अपडेट किया)

16 मार्च 2021

पिताजी की आत्मा की शांति के लिए बहुत बड़ी पूजा रखी और 51 पंडितों को भोज कराया।

(हार चढ़ी पिताजी की फोटो के सामने कुछ पंडित खाना खा रहे हैं और उन्हें खुद खाना परोसते हुए की फोटो के साथ इस बार का स्टेटस अपडेट हुआ।)

शाम ढले वह अपनी प्रोफाइल पर आए ढेरों कमेंट पढ़ रहा था, जिसमें उसे एक बेहद संवेदनशील आज्ञाकारी बेटे के खिताबों से नवाज़ा गया था।

साथ वाले कमरे में माँ खाँस-खाँस के दोहरी होती हुई अब भी इंतज़ार कर रही है कि बेटा खत्म हुई दवाइयाँ फिर से कब लाकर देगा। पति के खाली बिस्तर की तरफ देखते हुए उसकी आँखें भीग गई हैं।

काँपती आवाज़ में माँ ने बेटे को आवाज़ दी, दवाइयों की गुहार की। बेटे ने मुँह बनाया और झिड़कते हुए कहा- ''बहुत व्यस्त हूँ मैं। पापा के मरने के बाद जो इतना तामझाम फैला है, अभी वह तो समेट लूँ। समय मिलता है तो लाकर दूँगा।'' -कहकर एक बार फिर से वह फोन में व्यस्त हो गया। पाँच मिनट में नया स्टेटस अपडेट हुआ।

'पिताजी के बाद अब माँ की हालत बिगड़ने लगी है। हे ईश्वर! मुझ पर रहम करो। मुझमें अब और खोने की शक्ति नहीं बची है।' ■

अंजू खरबन्दा

अपराजिता

आज पति को गुजरे तीन महीने होने को आए। कितना कुछ बदल गया न इन तीन महीनों में! पति थे, तो कितनी निश्चिंतता थी जीवन में! वे ही कारोबार का सारा हिसाब- किताब देखते, बेटा न होने का ताना मिलने पर, वे ही उमा और दोनों बेटियों की ढाल बन डटकर खड़े रहते। एक बेटी तो ब्याह गए, दूसरी भी बस ब्याहने लायक ही है।

''चलो शुक्र है, संयुक्त परिवार है, माँ बेटियाँ ढकी रहेंगी।''

पति की मृत्यु पर सभी की ज़ुबान पर बस यही वाक्य था। उसने भी खुद को यही समझाया।

दुनियादारी से अनजान उमा इन तीन महीनों में शतरंज का मोहरा बन गई थी। आज्ञाकारी बहू की तरह जेठ के इशारों पर नाचती, विरोध तो कभी करना सीखा ही न था पगली ने!

एक दिन जेठ ने मकान के पेपर उसके आगे रख दिए- ''बहू इन पर हस्ताक्षर कर दो।''

उसने पहली बार नजर उठा जेठ की ओर देखा।

जेठ ने समझाने के लहजे में कहा- ''बन्नो अब ब्याहने लायक है, उसका ब्याह इतनी धूमधाम से करूँगा कि दुनिया देखेगी। तुम बस इन कागजों पर हस्ताक्षर कर दो, आज से तुम तीनों की पूरी पूरी जिम्मेदारी मेरी।''

उनकी कुटिल मुस्कान कमरे की मद्धिम रोशनी में भी उनके चेहरे पर दमक रही थी।

उनका काइयाँपन और शतरंज की चालें समझ आने लगी थीं उमा को।

''बड़ी और दामाद जी को ये कागज दिखा दूँ एक बार...!''

''उनका क्या लेना देना हमारे घर के मामले में?'' पहली बार जेठ जी क्रोधित हो फुफकार उठे।

''मेरे परिवार का हिस्सा हैं वे दोनों!''

''तुम्हारा सहारा हम लोग बनेंगे न कि वे दोनों!''

''अपना घर, कारोबार सब आपके नाम करके मैं आश्रित नहीं बनना चाहती जेठ जी... और हाँ मुझे ऐसे किसी सहारे की कोई आवश्यकता नहीं, जो मुझे ही बेसहारा बना दे।''- कहते हुए उमा ने वे कागज टुकड़े-टुकड़े कर डस्टबिन में डाल दिए और साँझ का दिया जलाने मंदिर की ओर बढ़ गई। दीपक की लौ फड़फड़ाने लगी, तो उसने झट अँजुरी से ओट दे उसे सुरक्षित कर लिया। ■

अनीता सैनी 'दीप्ति'

नेपथ्य

दिन सुहावना था। सुबह के यही कोई दस बजकर तीस मिनट का समय था। एक महिला भीड़ को चीरते हुए आर्मी हॉस्पिटल के साइकेट्रिस्ट डॉक्टर के सम्मुख अपनी पर्ची रखते हुए बोली– ''पिछले कुछ समय से मेरे बालों की सफ़ेदी बढ़ती जा रही है। जीवन में कोई समस्या नहीं। मन शांत है, फिर भी... ?''

''आप अपनी दिनचर्या के साथ–साथ अपना मानसिक डाइट प्लान बताइए ?'' डॉक्टर ने पर्ची पर पेपर वेट रखते हुए पूछा।

''मानसिक डाइट प्लान ? '' महिला ने अनभिज्ञ भाव से वाक्य दोहराया।

''स्वत: मिलने वाला या जो मैं फॉलो करती हूँ वह ?'' महिला ने विनम्र भाव के साथ डॉक्टर से जानना चाहा।

''स्वत: मिलता है, वह हम जानते हैं। आप जो फॉलो करती हैं, वही बताए।'' डॉक्टर ने सहज भाव से कुछ लिखते हुए कहा।

महिला, डॉक्टर को मौन दृष्टि से घूरती रही। डॉक्टर ने विश्वास जताते हुए कहा– ''मेरा आर्मी हॉस्पिटल का पिछले बीस वर्ष का अनुभव रहा है। यहाँ! सैनिकों से मानसिक डाइट प्लान फॉलो करवाए जाते हैं। वहीं मैं समझ सकता हूँ, समाज में उनकी पत्नियों से उसका निर्वहन करवाया जाता है।''

महिला मौन थी। अपनी साँस गटकते हुए 'ठीक है' के भाव के साथ गर्दन हिलाकर सहमति जताते हुए बोली– ''परंतु पिछले कुछ समय से मुझे लग रहा है कि मेरे क़दम बड़ी तेज़ी से बुढ़ापे की ओर अग्रसर हो रहे हैं। मेरी आत्मा देह से विरक्त हो रही है।'' महिला ने अनमने भावों से फिर अपनी बात रखी।

''इस पगडंडी पर खुली हवा का अभाव रहता है। आप स्वत: मिलने वाले मानसिक डाइट प्लान के ओवर डोज़ से परहेज़ करें।'' डॉक्टर ने कुछ स्पलीमेंट्स लिखते हुए कहा। ■

अर्चना राय

डोरियाँ

अस्पताल के बेड पर पड़े –पड़े दुख और ग्लानि से उनका दिल बैठा जा रहा था। जब से उन्हें पता चला कि उनके आपरेशन के लिए बेटे ने घर गिरवी रख पैसे जुटाए हैं, उनके आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। वे उस घड़ी को कोस रहे थे, जब उन्होंने बेटे से मिलने गाँव से शहर आने का फैसला किया था।

न आता तो कम– से– कम यह एक्सीडेंट न होता, न ही बेटे के सिर पर मुसीबतों का पहाड़ टूटता। सोच– सोचकर उनका बुरा हाल था। पैर टूटने से कहीं ज्यादा, उन्हें घर गिरवी रखने का दर्द हो रहा था।

बेटे– बहू को सामने से आते देख उनका जी चाहा कि अभी धरती फट जाए और वे उसमें समा जाएँ। मैं अपने बेटे से कैसे नजरें मिला सकूँगा, बहू मेरे बारे में क्या सोच रही होगी ?

पिता तो वह होता है जो बच्चों के दुख– तकलीफ दूर करता है। और एक वह है, जिसने अपने बच्चों को ही तकलीफ में डाल दिया है। एक्सीडेंट में मैं मर क्यों न गया, मन– ही– मन अपने आप को लानतें दे रहे थे।

''बेटा मनीष,..बहू मुझे मा..आ. फ..करना'' – हाथ जोड़कर वे हिलककर रो पड़े।

''अरे! पिताजी यह आप क्या कर रहे हैं..'' –बेटे ने झट उनके हाथों को थाम लिया।

''बेटा, मुझे पता ही नहीं चला, कब पीछे से आकर कार ने टक्कर मार दी।''

''पिताजी, सड़क हादसा तो किसी के साथ भी हो सकता है... इसमें आपकी कोई गलती नहीं है।'' बहू ने कहा।

''पर बेटा... मेरी वजह से घर....'' –कहते हुए उनकी हिचकियाँ बँध गईं।

''कोई बात नहीं पिताजी आपके साथ और आशीर्वाद से ऐसे कई घर बना लेंगे।'' बेटे ने ढाढ़स बँधाया।

''हम्म...''– बेटे की बातों ने उनके मन पर पड़े बोझ को हल्का कर दिया।

दर्द और कमजोरी की वजह से उनकी आँखें मुँद रहीं थीं, इसलिए वे उन्हें बंद कर शांत भाव से लेट गए।

''पिताजी!...आप बिल्कुल भी चिंता मत कीजिए .... सब ठीक हो जाएगा।'' –आगे बढ़कर बहू ने ससुर के माथे पर प्यार से हाथ फेरकर सहलाते हुए कहा।

ममता– भरा नर्म स्पर्श पाकर उन्होंने आँखें खोलीं। सामने देखकर वे चकित रह गए! अचानक उन्हें बहू के चेहरे में अपनी माँ की छवि दिखाई दे रही थी।

वह भी तो ऐसे ही उनके सिर पर हाथ फेर सारी तकलीफें हर लेती थी।

वहाँ खड़ी नर्स की आँखें बरबस भीग गईं।

एक तीस साल की माँ का साठ साल के बेटे को दुलार करते देखकर! ■

अश्विनी कुमार आलोक

तीर्थयात्रा

बाबूजी सेवानिवृत्त हुए तब से दस बरस बीत गए और इस दरम्यान घर की माली हालत बिगड़ती गई। बड़े बेटे की छोटी-सी नौकरी सिर्फ देखने के लिए है। उसकी अन्य आमदनियों के कई स्रोत हैं। यह न सिर्फ उन्हें लगता था. बल्कि दूसरे शहर में रहते छोटे बहू-बेटे भी बार-बार फोन पर माँ-बाबूजी के कान भरते रहते थे। बड़ा बेटा किसी प्रकार अपने बच्चों एवं माँ बाबूजी समेत दसेक लोगों के परिवार का भरण-पोषण कर रहा था। अन्य खर्च भी सँभाले नहीं सँभल रहे थे। पर, माँ-बाबूजी अपनी मान्यता पर अड़े थे कि बड़े बेटे बहू के जमा धन उनकी स्वार्थ-प्रवृत्ति के द्योतक हैं। छोटे बेटे ने शहर से यात्रा के टिकट भिजवा दिए। लंबी यात्रा में तीर्थ और अन्य शहरों के रोमांचक पर्यटन सम्मिलित थे। माँ के गुरूर ही नहीं छोटे बेटे के प्रति बढ़ते अपनत्व का भी कारण बन रही थी यह यात्रा। माँ-बाबूजी बड़े बेटे से कोई उम्मीद भी नहीं रख रहे थे। पेंशन की राशि रास्ते के खर्च के लिए पर्याप्त थी। शेष खर्च के लिए छोटे बेटे की सुपात्रता के प्रति उन्हें संदेह नहीं था। अहले सुबह बँधे हुए सामान के साथ माँ-बाबूजी निकल ही रहे थे कि घर में बड़े बेटे बहू की फुसफुसाहट ने माँ के पाँव छान लिये। उन्होंने पिताजी को इशारे से रोका। बाबू जी को कई-कई संदेह होने लगे और कुपात्र बड़े बेटे के प्रति दुराव गहराने लगा।

माँ ने सुना, बहू कह रही थी-''एक सौ रुपये हैं मेरे पास, माँ-बाबूजी को दे दो।''

''तुम्हीं दे दो। इतनी बड़ी यात्रा में सौ रूपल्ली ढेले की तरह है।'' बेटे की झुँझलाहट सुनी।

पर, कुछ तो दोगे। माँ बाबूजी की तीर्थयात्रा में भले इसका मूल्य न होगा, पर हमारी तृप्ति तो होगी।''

''मुझे लज्जा आती है, तुम्हीं दे दो। छोटे भाई की दौलत के आगे इस सौ रुपये को लेकर बढ़ रही तुम्हारी मूर्खता पर मुझे तरस आता है।'' बड़े बेटे की बात बाबूजी ने सुनी, तो उनकी झल्लाहट बढ़ गई।

उन्होंने माँ को झिड़का- ''तुम क्या इन ड्रामेबाजों की चिल्ल-पों बढ़ा रही हो। देर हुई जा रही है। निकल चलो।''

माँ ने कंधे से अपना बैग उतार दिया। बरामदे पर लगी कुर्सियों में से एक खींची और दूसरी बाबू जी के हवाले करते हुए बैठने का इशारा किया।''सुनो जी, बुढ़ापे में जो बच्चे साथ रहते हैं, उनका मूल्य कितना है, यह तो विचारो। शहर में रह रहे छोटे बेटे-बहू की दौलत के आगे साथ रहने वाले बड़े बेटे-बहू के सौ रुपये को रखकर देखो। मेरा कहा मानो, असल तीर्थ तो इस घर में है। मैं तो अब कहीं नहीं जाऊँगी। बड़े बेटे के सौ रुपये की मिठाई मँगवाकर अपने घर में एक साथ खाकर ही मुझे तृप्ति मिले, तो मैं क्यों तीर्थयात्रा पर जाऊँ।''

''हाँ, तीर्थों के मोक्ष की तुलना में घर की भावनाएँ अधिक तृप्ति देती हैं।'' बाबूजी की बातें सुनते ही बड़े बेटे के हाथ सौ रुपये के मुड़े-तुड़े नोट पर प्यार से छू गए। ■

डॉ. उपमा शर्मा

भविष्य

''प्रोफेसर साहब, जल्दी ही मेडिकल-काउंसिल की इंस्पैक्शन होने वाली है। आपके विभाग में मरीजों की संख्या काफी कम है। कालेज काउंसिल के स्टैंडर्ड पर खरा नहीं उतरा तो मान्यता रद्द हो जाएगी। हम सबका भविष्य खतरे में पड़ जाएगा।'' विभाग प्रमुख से कालेज के डीन ने कहा।

''जी सर, लेकिन करें क्या? मैडीकल-कैंप भी लगवाए, पर खास लाभ नहीं हुआ। अब मरीज समझदार हो गया है, स्टूडेंट्स से इलाज नहीं करवाना चाहता।''

''तो इलाज डॉक्टरज से करवाइए।''

''डॉक्टर स्ट्रैंथ तो पहले ही कम है, वे भी इलाज में लगे रहेंगे तो स्टूडेंट्स को पढ़ाएगा कौन?''

''फिर क्या हल है?''

''कालेज मैनेजमैंट से कहिए, नए डॉक्टर भर्ती करें। अच्छे डॉक्टर होंगे तो ही मरीज आएँगे।

''लेकिन इससे तो बजट बिगड़ जाएगा।''

''बजट बढ़ाने के लिए स्टूडेंट्स पर नए चार्जिज लगाएँ। आखिर सब उन्हीं के भविष्य के लिए ही तो कर रहे हैं।''

''आपकी बात मैनेजमैंट तक पहुँचा दूँगा। फिर भी मरीज बढ़ाने का कोई और उपाय?''

''रोजाना पाँच-सात फर्जी मरीज दाखिल हुए दिखा देते हैं। इसी तरह कागजों में बैड भर देते हैं। काउंसिल को सत्तर परसेंट बैड-आकुपेसी ही तो चाहिए।''

''इंस्पैक्शन के वक्त क्या करेंगे?''

''तब मज़दूरों, भिखारियों, रिक्शावालों को दिहाड़ी पर लाकर लिटा देंगे।'' प्रोफैसर ने मुस्कराते हुए कहा। ■

डॉ. कविता भट्ट

सिसकी

अथाह पीड़ा से कराहती शान्ति को स्ट्रेचर पर खींचते हुए हॉस्पिटल के लचर व्यवस्था वाले लेबर रूम से वार्ड में शिफ्ट किया गया।

शान्ति के सामने वाले बेड से कमला पास ही बैठी अपनी सास से बोली, ''लगता है गर्भपात हुआ है बेचारी का।''

सास कमला को घूरते हुए फुसफुसाई- ''तो तूने कौन सा गुल खिलाया है महारानी? यह भूसे का डला? वह भी पाँचवीं बार, अब तक एक पोते को तरस गई?''

पास ही पालने में एक सुंदर- सी नवजात बच्ची रो रही थी। कमला ने उतरे हुए चेहरे से उसकी ओर देखा। पास ही बैठा कमला का पति ,जिसने बच्ची को अभी तक भी गोदी में नहीं लिया था ; बच्ची के फोटो क्लिक करके फेसबुक पर अपलोड कर रहा था; वॉल पर लिख रहा था; 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ।' फेसबुक पर फ़ोटो पोस्ट करके वह उठकर बाहर चला गया।

कमला ने शान्ति से उदास स्वर में पूछा, ''क्या हुआ आपको, बच्चे कितने हैं आपके?'' शान्ति ने कराहते हुए कहा, ''छठी बार मेरा गर्भपात हुआ है, शादी के पंद्रह साल बाद भी मैं माँ नहीं बन सकी!'' यह कहकर उसने पालने में लेटी बच्ची को तरसती हुई नज़रों से देखा और सिसक -सिसककर रोने लगी। काश उसके ऐसी बच्ची होती!! ■

खेमकरण सोमन

मनीऑर्डर

घर का बँटबारा और बोलचाल बंद हुए कई वर्ष बीत चुके थे।

''पाँच हजार रुपये चाहिए।'' एक दिन बड़े भाई की पत्नी बोली-''माँ बीमार है। गाँव मनीऑर्डर करना है।''

बड़े भाई ने कुछ नहीं कहा। शान्त भाव से पैसे दे दिए। पैसे लेकर बड़े भाई की पत्नी फिर सीधे अपने देवर-देवरानी के घर पहुँच गई। वह उनके आर्थिक संकट से विचलित थी। पैसे दिए तो दोनों संकोच से गड़ गए।

''लेकिन दीदी!'' देवरानी ने कुछ कहना चाहा। देवर भी हैरान था।

''कुछ भी नहीं सुनूँगी।'' बड़े भाई की पत्नी बोली-''मुझे पता है छोटे इन दिनों एक-एक पैसे के लिए परेशान है। तुम भी अभी पेट से हो। बच्चे छोटे-छोटे हैं। मैं अब चलती हूँ।''

यह सब कुछ बड़े भाई ने देख लिया, परन्तु बोले कुछ नहीं। सम्भवत: वह अच्छी तरह जानते थे कि छोटा भाई आजकल घोर विपत्ति में है। घर में खाने-पीने, ओढ़ने की किल्लत है।

''मनीऑर्डर करा दिया?'' रात को बड़े भाई ने अपनी पत्नी से पूछा।

''जी हाँ!'' पत्नी बोली- ''आज दोपहर में करा दिया था।''

''ठीक है। समय-समय पर इसी तरह मनीऑर्डर करा दिया करो।'' बड़े भाई लगभग रो पड़े। कमरे से निकलते हुए बोले- ''अपना ही खून है।''

पत्नी सब कुछ समझ गई। वह अपनी आँखों से आँसू बहने से रोक न सकी। ■

घनश्याम अग्रवाल

औरत का गहना

इदरिस बहुत बीमार था। सात बच्चों का बोझ ढोते-ढोते उसे पता ही नहीं चला, कब मामूली खाँसी धीरे-धीरे उसकी साँसों में समा गई!

अबकी बार खाँसी का दौरा उठा तो नूरा काँप गई। उसे प्राइवेट डॉक्टर को बुलाना ही होगा, मगर उसकी फीस? अचानक उसकी निगाह उँगली में पड़े पुराने चाँदी के छल्ले पर गई। ये छल्ले इदरिस ने उसे सुहागरात को दिए थे। कहा था-''नूरा, ये मेरे प्यार की निशानी है, इन्हें कभी जुदा मत करना।'' -जब देनेवाला ही जुदा हो जाए तो ये किस काम के।

थोड़ी देर बाद नूरा की उँगली में छल्लों की जगह दस-दस के दो नोट थे। एक घण्टे बाद डॉक्टर ने ये नोट लेते हुए कहा-''तुमने बहुत देर कर दी, खुदा पर भरोसा रखो।''

डॉक्टर के जाते ही नूरा इदरिस के पास आकर उसकी छाती सहलाने लगी। इदरिस का ध्यान उसकी उँगली पर गया। वह बोला-''अरे, तुम्हारे छल्लों का क्या हुआ? लगता है, तुमने बेच दिए। ले-दे के यही तो एक गहना था तुम्हारे पास।''

''ये क्या कहते हैं आप? हया औरत का सबसे बड़ा गहना होता है, और फिर गहने मुसीबत के वक्त ही तो बेचे जाते हैं, अच्छे हो जाना, फिर आ जाएँगे।''

इदरिस न अच्छा हो सकता था और न हुआ।

इदरिस के चले जाने के बाद नूरा टूट गई। जब घर के डिब्बे खाली हों तो पेट कैसे भर सकता है। नूरा सोचती ही रही, न जाने कब हारून बड़ा होगा, अभी तो बारह बरस का ही है। जमीला भी तो सयानी हो गई। जवानी गरीबी-अमीरी कुछ नहीं देखती, बस चढ़ी ही

चली जाती है। इदरिस था तो आधा पेट तो भर जाता था, अब उसके भी लाले पड़ गए। इदरिस का खयाल आते ही उसे हारून याद आया।

एक दिन हारून को हल्का-सा बुखार हो आया, साथ ही कुछ खाँसी भी। नूरा ने गौर से देखा, न केवल हारून का चेहरा, बल्कि उसकी खाँसी भी इदरिस से मिलती-जुलती है। उसके कानों में प्राइवेट डॉक्टर के शब्द गूँज उठे-'तुमने बहुत देर कर दी।'

''या अल्लाह, रहम कर मेरे हारून पर।'' नूरा बुदबुदा उठी। अपनी उँगलियों को देखकर बोली-''अब तो छल्ले भी नहीं हैं, समझ में नहीं आता, क्या करूँ?''

''तू फिक्र मत कर अम्मा, अब देर नहीं होगी। प्राइवेट डॉक्टर जरूर आएगा।''- जमीला ने अम्मा को हिम्मत दी।

शाम को डॉक्टर आया। सुई लगाते हुए बोला- ''घबराने की कोई बात नहीं। मैं ठीक वक्त पर आ गया। ये जल्दी ही ठीक हो जाएगा''- जमीला ने डॉक्टर को फीस दी। हारून के लिए फल भी लाई। डॉक्टर के जाते ही नूरा ने पूछा ''अरी जमीला, मैं पूछती हूँ, ये फीस, ये दवा, ये फल, तू पैसे कहाँ से लाई?''

''अम्मा, मुझे कुछ काम मिल गया था।'' - यह कह जमीला औंधी पड़ सुबकने लगी। उसे नूरा के शब्द याद आए- 'हया औरत का सबसे बड़ा गहना होता है, और फिर गहने मुसीबत के वक्त ही तो बेचे जाते हैं।' ■

चैतन्य त्रिवेदी

आधे किवाड़ का पूरा जीवन

जब वह पहली पहली दफा आई थी, किवाड़ पूरा खुला था। फिर उस घर में जीना शुरू किया, तो आधा किवाड़ ही खुला रहता। वह आधे किवाड़ का जीवन जीती रही। उस आधे किवाड़ में अधूरी नजर से पूरा जीवन जी लिया उसने। सारे बसंत हँस लिये। उस घर के आधे किवाड़ के पीछे सारे सावन भिगो दिए।

उस आधे किवाड़ से आती-जाती पूरी दुनिया निहारती। इच्छा तो होती, किवाड़ पूरे खोल ले, लेकिन रिवाज स्वतंत्रता से बड़े होते हैं। गुजरती बारातें, नाच-गाने सब कुछ आ किवाड़ से देखती रह जाती। उसका आधा जीवन उस आधे बंद किवाड़ के पीछे रिसता रहा। फिर धीरे-धीरे एक बंद संदूक की तरह हो गई।

एक दिन किवाड़ पूरा खुला, जिस तरह एक दिन वह पूरे खुले किवाड़ से भीतर आई थी, उस किवाड़ को पूरा खुला छोड़ हमेशा के लिए चली गई। आसपास के उम्रदार और बुजुर्ग उसे आज भी याद करते हैं, ''मजाल है कभी वह पूरे किवाड़ खोल बाहर आई हो!''

मुझे याद आता है, उसके हारे हुए हाथों का आधे बंद किवाड़ का सहारा लिये, बग़ल में से पूरी दुनिया देखने का ढंग। शायद वह दुनिया नहीं, इस अपने टूटे घर, पूरे खुले किवाड़ का जीवन ही निहारती रही हो। ■

डॉ. छवि निगम

फाँक

शाम को बेटा जैसे ही लौटा, घर आम की खुशबू से महक उठा। कमला जी ने झट पूछा- ''दशहरी ले आए क्या?'' तो बेटे की ''अं... आं...'' को काटकर बहू तपाक से बोली- ''नहीं तो अम्मा!''

पर उन्होंने बहू को झट-से झोला लेकर अंदर जाते देख लिया था। उनका दिल जैसे दो फाँक हो गया। देर तक वे अपने सामने रखे बेस्वाद खाने को देखती रहीं। फिर धीरे-धीरे लाचारी में बुझा उनका मन.. गुस्से से सुलगने लगा।

क्या वो जानती नहीं थीं, परसों खीर बनी थी और उससे दो दिनों पहले हलुआ? पर उन्हें मिला क्या? वही लौकी-तरोई और पतली-सी दाल! ठीक है, माना कि शुगर ज्यादा है उनकी, पर सारी दवाएँ तो ले ही रही हैं न! चलती-फिरती हैं, घर के छोटे-मोटे काम भी कर देती हैं। और- ''अम्माजी ज़रा साग साफ़ कर दीजिए...मुन्ने की मालिश तो और कोई कर ही नहीं सकता...आपके हाथ वाला मिर्च का अचार खाने का मन है''- ये सब फरमाइशें करते, न ध्यान आता किसी को उनकी सेहत का! फिर ज़रा-जा मीठा देते क्यों जान निकली जाती है?

सुलगता हुआ मन जब भभकने लगा, तो वो उठीं, और अंदर वाले कमरे की ओर बढ़ने लगीं। बरामदा पार करते हुए अचानक उनकी नज़र कोने में पड़ी कबाड़ से ढकी...बेंत की आरामकुर्सी पर पड़ी, तो वे ठिठक गईं। सुन्न होते शरीर से...बस उसे देखती ही रह गईं।

फिर घिसटते कदमों से वे लौट पड़ीं। अब उनकी आँखों में नमी तैर रही थी, और यादों में एक धीमी घिघियाती आवाज़-''ज़रा-सा दे दो बहूरानी...बस एक फाँक..'' ■

जानकी वाही

छू लिया

सुहासिनी ने दूर से सरसतिया को देखते ही मुँह में कपड़ा लपेटा। उसे लगता है- जब भी कोई भी सड़क से गुज़रता है ,तो सरसतिया जानबूझ ज़ोर-ज़ोर से झाड़ू मारकर धूल उड़ाती है।

"पर इन लोगों के मुँह कौन लगे, कुछ कहा नहीं कि सात पुश्तें तार देंगे।"

बड़बड़ाती हुई सुहासिनी ने कदम तेज़ किए। रोज हर सुबह स्कूल जाते समय दोनों की भेंट होती है। एक के मुँह पर जातिगत दर्प और खीझ झलकती तो दूसरे के चेहरे से गुस्सा और नफ़रत। गनीमत थी दोनों अपने -अपने म्यान में सिमटी रहतीं। हाँ कभी- कभी सरसतिया की बड़बड़ाहट उस तक ज़रूर पहुँचती।

"हमसे परे-परे जाएंगे? हम तो छूत की बीमारी हैं ना?..."

जल्दी -जल्दी सरसतिया से दूर जाने की हड़बड़ी में सुहासिनी का पाँव जो मुड़ा, तो दर्द से दोहरी हो वहीं गिर गई। ये देख सरसतिया ने हाथ का झाड़ू फेंक सुहासिनी को थाम लिया,और खींच-तानके पाँव की नस ठीक कर सहारा दे खड़ा कर दिया।

फिर मुस्कुराकर बोली -"हमने छू लिया तुमको।"

" सच कहा, तुमने तो हमारे मन को भी छू लिया" सुहासिनी ने सरसतिया के धूल भरे हाथों को प्यार से पकड़ लिया। लगा एक अभेद्य दुर्ग ढह गया। ■

दिव्या शर्मा

रसोई

"विभा चाय ले आओ बढिया सी।" घर के अंदर घुसते ही सुधीर ने पत्नी को आवाज़ लगाकर कहा और खुद पिता के निकट बैठ गया।

"पापा देखो, चार कमरे निकल आए हैं और मंदिर के लिए अलग स्पेस भी।" -सुधीर ने उत्सुकता से पिता के सामने नक्शा बिछाकर कहा।

"बढिया, अच्छा यह बता कि ड्रांइग रूम का साइज क्या है? छोटा नहीं होना चाहिए दिनभर वहीं बैठना होता है मुझे"-पिता नक्शे को देखते हुए बोले।

"अरे पापा! यह देखो, पूरे पंद्रह बाई पंद्रह का निकल रहा है। ध्यान से देखो न। दो बैडरूम चौदह बाई बारह के और एक बारह बाई बारह का।" सुधीर की आवाज़ में अलग खनक थी।

"बस सब बढ़िया हो गया। बस अब काम शुरू करवा दे प्लॉट पर। इस दड़बे से निकलें बाहर,"- पिता ने कहा।

"रसोई का क्या साइज है?" विभा ने पूछा।

"अरे यार तुम चाय रखो पहले, बहुत थक गया हूँ।" सुधीर ने विभा की बात को अनसुना कर बोला।

सुधीर और श्वसुर जी को चाय पकड़ाकर विभा फिर नक्शे को देखने लगी।

"आठ बाई आठ की रसोई तो बहुत छोटी बनेगी।"- विभा बोली।

"आठ बाई आठ की रसोई छोटी नहीं होती और वैसे भी तुम्हें कौन- सा रसोई में खाट बिछानी है! खाना ही तो बनाना है।" -चाय का घूँट भरते हुए सुधीर ने कहा।

"मेरा तो पूरा दिन ही वहीं बीतता है बस खाट ही नहीं बिछाती। गर्मी में कितनी घुटन हो जाती है, तुम क्या जानो।" विभा के स्वर में उदासी थी।

"अरे यार, मम्मी ने पूरी जिंदगी इस छह बाई छह की रसोई में बिता दी, उन्होंने तो कभी शिकायत नहीं की, छोटी रसोई की!"-सुधीर ने चिढ़ते हुए कहा।

"कभी खड़े होकर देखना जून की गर्मी में। खुद पता चल जाएगा मैं शिकायत कर रही हूँ या परेशानी बता रही हूँ।" -विभा बोली।

"यार नौटंकी न करो। क्यों काम में विघ्न डाल रही हो! अब नक्शा बन गया है।"-सुधीर झल्लाते हुए बोला-

"तो ठीक करवा ले नक्शा। शिकायत नहीं की, तो क्या मुझे दिक्कत नहीं थी! खूब परेशानी होती थी इस पिंजरे-सी रसोई में खाना बनाने में। पूरी जिंदगी सोचती रही कि अगर नया घर बना, तो रसोई खूब खुली बनाऊँगी।"-अब तक चुप बैठी सुधीर की माँ बोल पड़ी।

"सच में माँ,मैं अपने बेडरूम से ज्यादा रसोई को खुला चाहती हूँ, ताकि चार मेहमानों के आने पर खाना बनाने में दिक्कत न हो।" सास की बात से बल ले विभा बोली।

"बिल्कुल सही है। औरत की पूरी जिंदगी रसोई के धुँए में स्वाहा हो जाती है; लेकिन किसी को इसका एहसास नहीं होता। सुधीर तू रसोई का साइज दो फुट बढ़ा और देख रसोई में हवा और रौशनी बराबर हो।"-माँ ने आदेश दिया।

"फिर तो ड्राइंगरूम छोटा करना होगा। पापा से पूछ लो पहले माँ।" सुधीर ने पिता की ओर देखकर कहा।

"तेरे पापा को बनाना पड़ता है क्या खाना!" माँ चिढ़ते हुए बोली।

"बेटा सुधीर,रोटियाँ चाहिए, तो जो यह सास-बहू कहें मान ले भाई।" पिता ने पत्नी की ओर देखकर बेचारगी से कहा।

"नहीं पापा, रहने दीजिए। यदि आप दोनों की सहमति नहीं है, तो मैं कुछ नहीं कहूँगी।" विभा धीरे से बोली।

"अरे बेटा, मेरी सहमति तो सबकी खुशी में है और सबकी खुशी तो घर की लक्ष्मी से जुड़ी है। वह दुखी तो कैसी सहमति! और फिर हम दोनों को यह बात समझनी चाहिए कि कैसे गर्मी में एक औरत घर का पेट भरने के लिए बिना शिकायत जलती रहती है।"-श्वसुर जी की बात सुन विभा का चेहरा खिल उठा। उसने सुधीर की ओर देखा।

"ठीक है भई। बहुमत की जय- जयकार है। कल ही रसोई के साइज और वेंटिलेशन को लेकर बात करता हूँ; लेकिन एक शर्त पर।" सुधीर बोला।

"कौन सी शर्त?" माँ ने पूछा।

"मुझे समोसे खाने हैं, वह भी माँ के हाथ के।" सुधीर चहकते हुए बोला।

"तू नहीं सुधरेगा।अब भी माँ को गर्मी में मारेगा। बीवी को बोल अपनी!" माँ ने नकली गुस्सा दिखाते हुए कहा।

"नहीं माँ,आपकी बहू को कुछ नहीं कहूँगा; क्योंकि जान गया हूँ कि बहुमत उसी के पास है।" सुधीर ने दोनों हाथ विभा की ओर जोड़ दिए।

उसकी इस हरकत पर तीनों के चेहरे पर हँसी खिल गई जैसे बसंत की धूप आँगन में पसर गई हो। ■

पूनम कतरियार

बुद्ध

महाबोधि-मंदिर को दूर से ही प्रणाम करते हुए, उन्होंने अपनी मनोकामना पूर्ण होने की मन्नत माँगी। कुछ ही देर में वे रघुआ के कच्चे-घर के बाहर खाट पर बैठे थे। दूर तक फैले विशाल खेतिहर ज़मीन को देखते हुए उन्होंने सोचा- ''अब सब झमेला ख़त्म हो जाएगा। बार-बार फ़सल बुआने-बेचने में छुट्टी बर्बाद होती है। अभी दो महीने पहले ही तो धान की फ़सल कटवा-बेचकर गए थे। अच्छा है, अब बिल्डर को रिसॉर्ट बनाने देकर, करोड़ों में खेलेंगे!''

बिल्डर का इंतज़ार करते हुए, उनकी आँखों में रिसॉर्ट का स्वरूप झिलमिलाने लगा-दूर तक फैले रिसॉर्ट में लॉन टेनिस, वॉलीबॉल, टेबुल-टेनिस आदि अनेक प्रकार के खेलों के शानदार कोर्ट, कृत्रिम झील में तैरते छोटे-बड़े, जल-नौकाएँ ...चीन, जापान, श्रीलंका, थाईलैंड आदि अनेक देशों के बौद्ध-धर्मावलंबियों और पर्यटकों से गुलजार रिसॉर्ट!

उनके चेहरे पर अभिमान का भाव झलका तो गर्दन थोड़ी अकड़ने लगी। रौबदार आवाज़ में रघुआ को आवाज़ दी-''का रे रघुआ, यहाँ से बुद्ध-भगवान का मंदिर दस-बारह किलोमीटर ही होगा न? बिदेशी लोग तो इधर खूब आते होंगे?''

''जी हुजूर, मंदिर तो ज़्यादा दूर नहीं है। बाक़ी बिदेसी सबका हमको नहीं पता। हमनी का तो दिन आप मालिक लोगन के खेती-बारी और गाय-गोरू में बीत जाता है...बच्चा सब सरकारी स्कूल में पढ़-लिख रहा है और जिनगी में का चाही।''

रघुआ ने ताजे दही का छाछ उन्हें थमाते हुए जिस निस्पृह भाव से कहा, उसके सामने उन्हें अपना करोड़ों का सपना बड़ा ओछा लगा।

ताजे छाछ के स्वाद में घुली उनकी ज़ुबान लटपटा गई और वे फ़ोन पर कह रहे थे- ''सॉरी, मुझे वह प्रोजेक्ट कुछ ख़ास नहीं लग रहा।''

फोन काटते ही उन्हें बोध हुआ कि उनके सिर से एक बड़ा बोझ उतर गया है। चारों ओर नज़र घुमाई, तो रघुआ और आस-पास रह रहे अपने खेतों में काम करनेवाले भूमिहीन परिवारों को अपने दैनिक कार्यकलाप में व्यस्त देखा, उनकी आँखें ख़ुशी से भर आईं और वे असीम आनंद में डूब गए। ■

प्रियंका गुप्ता

भूकम्प

अभी वह ऑफिस जाने की तैयारी में लगा ही था कि सहसा बदहवास सी पत्नी कमरे में आई,''जल्दी बाहर निकलिए...। बिलकुल भी अहसास नहीं हो रहा क्या...भूकंप आ रहा है। चलिए तुरंत...।'' वो उसकी बाँह पकड़कर लगभग खींचती हुई उसे घर से बाहर ले गई।

पत्नी को यूँ रुआँसा देखकर जाने क्यों ऐसी मुसीबत की घड़ी में भी उसे हँसी आ गई। बाहर लगभग सारा मोहल्ला इकट्ठा हो गया था। एक अफरा-तफरी का माहौल था। कई लोग घबराए नज़र आ रहे थे। कुछ छोटे बच्चे तो बिना कुछ समझे ही रोने लगे थे।

सहसा उसे बाऊजी की याद आई। वो तो चल नहीं सकते खुद से...और इस हड़बड़-तड़बड़ में वह उनको तो बिलकुल ही भूल गया। वो जैसे ही अंदर जाने लगा कि तभी उसके पाँव मानो ज़मीन से चिपक गए। बाऊजी की ज़िन्दगी की अहमियत अब रह ही कितनी गई है। वैसे भी उनका गू-मूत करते करते थक चुका था वो...और उसकी पत्नी भी...। ऐसे में अगर भूकंप में वो खुद ही भगवान को प्यारे हो जाएँ तो उस पर कोई इलज़ाम भी नहीं आएगा।

अभी कुछ पल ही बीते थे कि सहसा पत्नी की चीख से वो काँप उठा। उनका दुधमुँहा बच्चा अपने पालने में ही रह गया था।

अंदर की ओर भागते उसके कदम वहीं थम गए। वह गिरते-गिरते बच गया था। एक हाथ से व्हील चेयर चलाते बाहर आ चुके पिता की गोद में उसका लाल था।

जाने भूकंप का दूसरा तेज़ झटका था या कुछ और ...पर वह गिरते-गिरते बच गया था। ■

भगवान वैद्य प्रखर

दरिंदे

''गौरांगी... चल, मैं तेरा सिर धो देती हूँ। क्या हाल बना रखा है, इतने सुंदर बालों का। पता नहीं, कभी दो बूँद तेल भी डालती है सिर में कि नहीं ...!'' सावन में मायके आई बेटी से मम्मी ने कहा।

गौरांगी पहले तो तैयार हो गई पर फिर पता नहीं क्या सोचकर मना कर दिया। बोली, ''मैं खुद धो लूँगी मम्मी। आप वह सीकाकाई वाला साबुन भर लाकर रख देना, बस्स।''

''अरी, मैंने लाकर रखा है इसीलिए न कह रही हूँ। चल।''

गौरांगी मना करती रही पर मम्मी कहाँ माननेवाली थी! जबरदस्ती ले जाकर बिठा दिया गुसलखाने में और खोल दिए गौरांगी के केश।

"अरी, ये इत्ता बड़ा निशान काहे का है यहाँ!" गर्दन पर नजर पड़ी तो मम्मी जैसे चौंक गई।

"वो ...घर के पिछवाड़े एक पेड़ गिर गया था। ईंधन के काम आएगा सोचकर मैं उसका एक लक्कड़ उठा लाई थी। उसी का निशान है।"

"नहीं... ये इत्ता बड़ा निशान लक्कड़ का नहीं हो सकता! लक्कड़ तो कंधे पर लाया जाता है...ये निशान कुछ और ही कह रहा है। ... अरी दय्या, ये तो पूरी पीठ ही हरी-नीली पड़ गई है...!" मम्मी ने गौरांगी की पीठ अनावृत्त कर दी थी।

"ऐसा क्या किया है तुमने ... बोलो...बताओ ये किस चीज के निशान हैं?" मम्मी ने गौरांगी का चेहरा अपनी ओर मोड़ लिया और दुनियाभर की आशंका से ग्रस्त होकर उसकी आँखों में देखने लगी।

गौरांगी चुप! सोच रही थी, क्या जवाब दे। ...उसकी आँखें पोखरा गईं। उनमें ज्वार उठने लगा।

"अरी बोल ना क्या हुआऽऽ ? बता...सच-सच बता मुझे ...नहीं तो मेरा मरा मुँह देखोगी।" मम्मी जैसे बौरा गई थी।

"गर्मियों में एक बैल मर गया था। ... सास, ससुर और तुम्हारे दामाद पीछे पड़ गए कि मायके जाकर बैल खरीदने के लिए पैसे लेकर आओ। ... रोज मारपीट करते। ...तुम लोगों के हालात तो मैं जानती थी। उन्हें बताया पर वे सुनने को तैयार न थे। दरिंदगी पर उतर आए। चार-चार दिन कमरे में बंद करके रखते थे। खाना नहीं कि पीने को पानी नहीं। बस, किसी ने भी आना और पिटाई करके चले जाना। मैंने कहा, मैं जुतूँगी हल में।"

"और ये पीठ ...!"

"अब छोड़ो भी मम्मी। जो हो गया, सो हो गया।"

"नहीं ...मुझे बताओ ... ये साँप जैसे लंबे-लंबे निशान काहे के हैं। पूरी पीठ हरी-नीली पड़ गई है मेरी बेटी की...!" धीरज का पहाड़ दरकने लगा था।

"हल जोतते वक्त वह नशे में भूल जाते थे कि हल में बैल नहीं ...मैं जुती हूँ।" ■

मंजु मिश्रा

बदलते दृष्टिकोण

संजीवनी तो बस एकटक छत को घूरते हुए सोचे जा रही थीं कि अब तक वो इतनी अन्धी कैसे बनी रहीं, आज जब उनकी आँखें खुली थीं तो उनके आँसू रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे, आज ही तो सही मायने मे वे जान पाई थीं कौन अपना है और कौन पराया।

बात तो बस हँसी मजाक में ही शुरू हुई थी, लेकिन इतनी बिगड़ जाएगी, यह कहाँ किसी ने सोचा था। बिट्टी, उनकी तबियत खराब है सुनकर उनको देखने के लिए अपने ससुराल से आई हुई थी। यूँ ही बातों- बातों में उसने कहा "अम्मा तुम तो मेरा और भैया का हिस्सा- बाँट अपने हाथों ही कर दो, क्या फ़ायदा कि तुम्हारे बाद हम भाई- बहन के बीच लड़ाई- झगड़ा हो" - उन्होने भी हँसते हुए ही कहा, अरे बिट्टी काहे का हिस्सा बाँट, तू तो ले गई अपना हिस्सा तेरे ब्याह में, अब तो जो है ,सब रज्जू का है। हाँ भाई तेरा जो चाहे सो करे, वह तुम दोनों के बीच की बात... और हँसती रहीं। मगर पता नहीं बिट्टी को क्या हुआ कि एकदम गुस्से में आ गई और बोली, ऐ अम्मा तुम क्या समझती हो, तुम सब भैया को सौंप दोगी और मैं चुप बैठी रहूँगी, तुम इस गलतफहमी में ना रहना। आजकल बेटा-बेटी दोनों का बराबर का हिस्सा होता है, तुमने न दिया ,तो मैं कोर्ट कचहरी तक जाऊँगी, मगर ऐसे ही अपना हिस्सा थोड़े छोड़ दूँगी। वे तो अवाक् रह गई थीं यह बात सुनकर। सब थोड़ी देर तो सन्न से बैठे रहे उसके बाद ममता ने खाना लगाया लेकिन सब बिना खाए-पिए ही अपने अपने कमरों में चले गए।

वह अपने बिस्तर पर मानो सकते की मारी-सी बैठी थीं और सोच रही थीं कि यह सब क्या हो गया, आखिर कहाँ गलती हो गई उनसे .... इतने में उनकी बहू ममता उनके कमरे में आई और उनका हाथ पकड़कर सहलाते हुए बोली अरे अम्मा जी आप काहे को चिन्ता करती हैं, तबियत और खराब हो जाएगी आपकी। मान लीजिए न जीजी की बात, वह जो कह रही हैं। आप तो बस जल्दी से ठीक हो जाएँ और बबली और चिंटू के साथ खेलें , हमारे सर पे आपका साया रहे, हमें इससे ज्यादा क्या चाहिए। आपका आशीर्वाद बना रहे, हमें कौन- सी कमी है। वे उसका मुँह देखती रहीं और उसे गले लगाकर बोलीं- "अच्छा जा अब रात बहुत हो गई सो जा, बच्चे भी राह देख रहे होंगे तेरी।"

ममता के जाते ही वे फूट-फूटकर रो पड़ीं, यही सोच सोचकर उनकी आँखों से जारोजार आँसू बह रहे थे कि जिसे पराई समझकर हमेशा मन से दूर रखा, उसने तो हमेशा हमें गले ही लगाया, सुबह शाम अम्मा जी- अम्मा जी करती देखभाल करती रही। हम ही मूरख थीं जो, सच्चे स्नेह को दिखावा मानकर खुद को ठगाती रहीं। आज वह जान गई थीं कि बेटियाँ पराई ही होती हैं, अपनी तो बहुएँ होती हैं, जो नए आँगन में, नई मिट्टी में रोप दी जाती हैं, उसके बाद भी फलती- फूलती हैं, ढलती उम्र में हमारा सहारा बनती हैं। मानो खुद को ही सीख देती हुए बोलीं -"हम सासुओं को बेटियों को विदा करते हुए सच्चे मन से विदा कर देना चाहिए और बहुओं को गृह प्रवेश करते हुए पूरे और सच्चे मन से अपना लेना चाहिए। मन ही मन उन्होंने कुछ तय किया और शान्त मन से सो गईं।

सुबह उठीं, बहू को आवाज़ दी, उसके आने पर बोलीं .. "सुन तो ममता, रज्जू से कहना बिट्टी की वापसी की टिकट करा दे, जाए। अपना घर बार देखे बहुत दिन हो गए ...कब तक मायके में पड़ी रहेगी, पराई गृहस्थी में टाँग अड़ाती रहेगी।" ■

महेश शर्मा

ज़ायका

आज भी ऑफिस में वह देर तक व्यस्त रही थी।

घर लौटते समय, रास्ते में उसने बच्चों को फोन लगाया–''तो आज डिनर में क्या खाना है?''

दूसरी ओर से बच्चों की फरमाइश शुरू हो गई–''मम्मा आज पनीर बटर मसाला–नहीं नहीं–मेरे लिए तो मेथी मलाई मटर और स्टफड पराँठा–नो मॉम–मुझे स्टिर फ्राई ब्रोक्ली खाना है–मम्मा मण्डे को जो मिक्स वेज खाई थी न, आज भी वही खाने का मन है–और कल वाला डिज़र्ट भी–''

उसकी अँगुलियाँ अपने फोन पर तेज़ी से चलने लगीं। गाड़ी चला रहे पति ने टोका, ''आज मेरे फोन से फूड ऑर्डर करो। नया ऐप इंस्टाल किया है। पहले ऑर्डर पर फोर्टी पर्सेंट डिस्काउंट है।''

''हुँह! नो वे! मेरा वाला ऐप मुझे रोज़ डिस्काउंट दे रहा है। छह ऑर्डर पर दो कॉम्बो मील्स फ्री!''

''सुना है, तुम्हारे वाले ऐप के डिलीवरी बॉय, पैकेट में से थोड़ा खाना चुराकर खा जाते हैं'', पति मुस्कुराया, ''पता नहीं, हम और हमारे बच्चे रोज़ाना, किस-किस की, जूठन खा रहे हैं।''

वह झल्ला उठी–''व्हाट रबिश यार! यह सब बकवास है। ऐसा कभी नहीं होता।''

पति हँस पड़ा। वह फिर से डिनर ऑर्डर करने में मशगूल हो गई।

वे घर पहुँचे, तो डिलीवरी बॉय उनकी बिल्डिंग के बाहर खड़ा मिला। किशोर अवस्था का वह लडका, शायद नया था और उस आलीशान बिल्डिंग में घुसने से झिझक रहा था।

उसने गाड़ी से उतरकर लड़के से खाने के पैकेट लिये और अभी उसे पैसे दे ही रही थी कि एकाएक रुक गई–''यह पैकेट, यहाँ से थोड़ा खुला हुआ क्यों है?''–लड़के को घूरते हुए उसने पूछा।

लड़का हड़बड़ा गया–''हमें तो ऐसे ही पैकबंद दिया गया था मैडम।''

''तुमने इसमें से कुछ खाया है न?'' वह कठोर स्वर में गुर्राई।

''नो मैडम! भगवान की कसम!''–लड़का घबरा गया, ''हम तो छुए तक नहीं!''

उसने खाने के पैकेट्स वहीं फेंक दिए और गुस्से में पैर पटकती हुई बिल्डिंग में चली गई।

पति मुसकुराते हुए, अपने फोन से खाना ऑर्डर करने लगा।

लड़का कुछ देर तक तो सहमा-सा खड़ा रहा, फिर हिम्मत जुटाकर बोला–''साब, हम यह सब खाना नहीं खाते हैं-भगवान की कसम सा' ब! हम तो बस अपनी अम्मा के हाथ का बना ही–''

वह एकाएक चुप हो गया।

फोन पर तेज़ी से चल रही, पति की अँगुलियाँ ठिठक गईं। ■

रचना श्रीवास्तव

चकोर

उस घर के सामने पार्क में एक लड़का रोज़ आता और पेड़ के नीचे खड़ा होकर चार बजे का इंतज़ार करता। चार बजते ही उस घर की बालकनी में दूधिया- से रंग की एक नाज़ुक-सी लड़की आती, कभी अपने बाल सुखाती, कभी वहाँ के गमलों में पानी देती और कभी अरगनी पर कपड़े फैलाती। लड़का प्रतिदिन नियम से आता। पेड़ के नीचे खड़ा होता और लड़की को देखता। यही सिलसिला कई हफ़्तों तक चला। अब उसके दोस्तों को भी इस लड़की के बारे में पता चल गया। अब अक्सर उसके दोस्त भी लड़के के साथ आते और सभी पेड़ के नीचे खड़े हो चार बजे की प्रतीक्षा करते। अब वह चुपचाप लड़की को नहीं देखता, लड़कों के कहने पर उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने की शालीन कोशिश भी करने लगा, पर लड़की अपना काम करके चुपचाप चली जाती। यह सिलसिला भी बहुत दिनों तक चलता रहा। अब दोस्त उसको बात करने के लिए उकसाने लगे। कहने लगे कि कब तक यूँ दूर दूर से देखेगा, जा न उससे बात कर ले। एक दिन लड़के ने बहुत हिम्मत की और सड़क पार कर उस इमारत के सामने पहुँचा और फाटक खोलके अन्दर आ गया। लड़की अपनी बालकनी में अरगनी पर कपड़े डालने की तैयारी कर रही थी। लड़के ने देखा कि वहाँ तो अरगनी है ही नहीं। डोरी टूटकर ज़मीन पर गिरी पड़ी थी, लड़की इससे अनभिज्ञ रोज़ के अभ्यास से कपड़े डालने के लिए टटोलकर डोरी की तलाश कर रही थी। लड़के को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था, उसकी इच्छा हुई कि ज़मीन पर गिरी डोरी को वापस बाँध दे, पर इस डर से कि उसकी मौजूदगी का एहसास होते ही लड़की डरकर चिल्ला ना पड़े, उसने यह विचार त्याग दिया। उसने आँख भरकर लड़की को देखा और उदास मन से वापस आ गया।

दोस्तों को बोला , ''पास से देखने पर मुझे लड़की बिल्कुल नहीं जमी, बेमतलब समय ख़राब किया। अब कभी यहाँ नहीं आना है, चलो चलते हैं।'' सभी वहाँ से चले गए।

यह कई दिन पहले घटा था।

ख़ास बात यह कि वह लड़की अभी भी रोज़ाना चार बजे बालकनी में आकर अपने रोज़ के काम करती है और वह लड़का भी प्रतिदिन पेड़ के नीचे खड़े होकर चुपचाप उसको निहारता रहता है....■

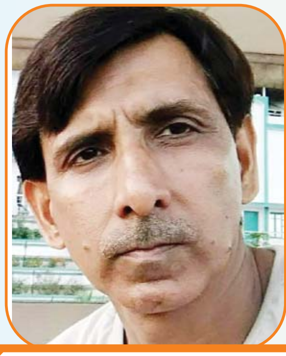

विरेंदर 'वीर' मेहता

दिन अभी ढला नहीं

"कितने साल गुजर गए सुधा, लेकिन ज़्यादा नहीं बदला हमारा गाँव। बस कुछ आधुनिकता की निशानियों को छोड़; वही बाग-बगीचे और वही हरे-भरे रास्ते।" शाम की सैर के बीच छाई चुप्पी को भंग करते हुए उमाशंकर जी ने पत्नी से बात शुरू की।

"सही कहा आपने। कुछ बगीचों की बाड़ जरूर टूटी-फूटी लकड़ियों की जगह मैटल की खपच्चियों से बन गई है, पहले से सुंदर और ज़्यादा मजबूत।" सुधा ने सामने नजर आते बग़ीचों की बाड़ के उस पार लहलहाती फसल को निहारते हुए उत्तर दिया।

बरसों बाद लौटे थे वे गाँव। बहुत पहले ही अपनी ज़िद के चलते अपना संयुक्त परिवार छोड़ बच्चों को लेकर विदेश चले गए थे क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि गाँव के देहाती-अनपढ़ माहौल में उनके बच्चे साँस लें। और फिर समय गुजरता गया, उन्होंने अपने बच्चों को शिक्षित और आधुनिक नागरिक के साथ सफल इंसान भी बनाया लेकिन शायद उचित संस्कार नहीं दे पाए। परिणामत: आज फिर वह अपने गाँव में लौट आए थे, नितांत अकेलेपन को लेकर।

"मैं जानता हूँ सुधा, तुम्हारे लिए गाँव में रहना कठिन है; लेकिन बच्चों से मैं अपना अपमान बर्दाश्त कर सकता था; पर उनका बार-बार तुम्हारा अपमान करना, वह बर्दाश्त नहीं होता था। ख़ैर, उन्हें सही संस्कार नहीं दे सके; ये दोष भी तो हमारा ही है।"

"आप ऐसा न कहें और परेशान भी न हों। मुझे यहाँ कोई दिक़्क़त नहीं होगी।" -पति की बात का प्रत्युत्तर देते हुए वह कहने लगी। "सच तो ये है कि मैं सारा जीवन यही समझती रही कि उच्च शिक्षा और आधुनिक सभ्यता से ही हम संतान को एक अच्छा इंसान बना सकते हैं। लेकिन अब जाकर समझी हूँ कि संस्कार तो प्रकृति के वो बीज होते हैं जो परिवार के बुजुर्गों और अपनों के सान्निध्य-प्रेम में ही पैदा होते हैं। काश कि हमने अपने बच्चों की परवरिश यहीं परिवार के बीच रहकर की होती, तो जीवन की ढलती साँझ में हम अकेले नहीं होते।"

"सुधा, बीता हुआ समय तो लौटकर नहीं आता; लेकिन हम चाहें तो अतीत का प्रायश्चित कर सकते हैं।" उन्होंने अपनी नजरें पत्नी की ओर जमा दी।

"कैसे. . .?"

"सुधा!"- पत्नी की प्रश्नवाचक नजरों को निहारते हुए उनकी आँखों में एक विश्वास था। "हमारे समाज में और भी बहुत से परिवार बिखरे हुए हैं या बिखरने की कगार पर हैं, जिन्हें हम चाहें तो... "

"हाँ क्यूँ नहीं, इससे बेहतर हमारे जीवन का आख़िरी पड़ाव और क्या होगा?"- पति की अधूरी बात पर सहमति की छाप लगाते हुए सुधा ने मुस्कराते हुए पति का हाथ थाम लिया। ■

शिवचरण सरोहा

रंग -बदरंग

"ये क्या है प्रिया?...यह तू क्या बनाने लगी है? काला आकाश, बिना पत्तों वाला भूरा पेड़, मटमैली धरती...कहाँ गए तेरे गुलाबी फूल और सतरंगी तितलियाँ?..ये क्या करने लगी है आजकल? पहले की तरह लाल, पीले, हरे, नीले चटक रंग क्यों नहीं लगाती अपनी पैंटिंग्स में?"

गुमसुम प्रिया ने उदास आँखों से मम्मी की ओर देखा, बोली कुछ नहीं। आँखों के कोने गीले हो उठे. मम्मी बिना उसकी ओर देखे बोली।

"बेटा, चटक ख़ूब चटक रंग भर इसमें, तभी तो तेरी पेंटिंग खिलेगी। जा अपने अंकल को भी दिखा दे।"

"अंकल! नहीं- नहीं।" वह सकपका उठी।

मम्मी पलटकर किचन में चली गई और बदरंग पेंटिंग हाथ में लिए गुमसुम उदास खड़ी रह गई प्रिया। ■

डॉ. शैलजा सक्सेना

कागज़ की कश्ती

माँ, गाँव के खुले आँगन से बेटे के शहर के बंद फ्लैट में आई थीं। माँ गाँव में ही रहना चाहती थीं, अपने रहने से वो पुराने रिश्तों को बचा लेना चाहती हैं, हल्दी-अक्षत वाले त्योहार बचा लेना चाहती हैं, अपने पेड़-पौधों के बीच रहना चाहती थीं, बेटा माँ को बार-बार देखने जाने में समय बचाना चाहता है, पैसा बचाना चाहता है, अपने और अपने बच्चों के बीच रखना चाहता है। वैसे भी गर्मियों की छुट्टियाँ! बच्चों को अकेले छोड़ना ठीक नहीं! माँ बच्चों को गाँव ले जाना चाहती थीं, वहाँ आम, अमरूद के पेड़ों के बीच झूला झुलाना चाहती थीं। दोनों की अलग-अलग सोच और अलग-अलग फिक्र!

माँ बच्चों को पुरानी कहानियाँ सुनाती हैं, रात उनके सिर पर तेल मल देती हैं और बहू के दफ्तर चले जाने पर उनके मन के पसंद की चीज़ें खिलातीं, और कभी ताश तो कभी गिट्टे खेलना

सिखातीं। बहू को लगता कि माँ बच्चों को बिगाड़ रही हैं। वह मुँह बनाती और बच्चों को रोकती, बच्चे न सुनते तो पति को कहती। उसे लगता ऐसे बच्चों का मन पढ़ने से हट जाएगा, ऐसे में उनका भविष्य क्या होगा? वह गंभीर चिन्ता में पड़कर घबरा उठती।

पिछले तीन दिनों से बारिश हो रही थी। इतना पानी गाँव में पड़ता तो ज़मीन पानी पीकर लहलहा उठती, पर यहाँ शहर में कंक्रीट पानी पीती नहीं, केवल जमा करती है और सड़कों पर जाम लगवा देती है। पूरा शहर बारिश के मारे परेशान था। बेटा-बहू झींकते हुए जाते और झींकते हुए आते। माँ को गाँव के झूले और सावन के गीत याद आ रहे थे। आज शाम बेटा लौटा तो घर खाली लगा। पत्नी से पूछा, तो पता लगा कि वह भी अभी आई है और उसे भी घर खाली मिला। तेज़ न सही पर बूँदा-बाँदी अभी भी हो रही थी, ऐसे में माँ बच्चों को लेकर कहाँ गई होंगी। दोनों परेशान हो गए। पत्नी को चिन्ता थी कि पानी जमा होने से जो मच्छर-कीड़े पैदा हो गए हैं, उनके काटे से छोटे बच्चे बीमार न पड़ जाएँ, फिर छुट्टी लेकर घर बैठना पड़ेगा, क्या मुसीबत है। दोनों छाता लेकर निकल पड़े। कॉलोनी के पीछे ही एक बाग है, सोचा पहले वहीं जाकर देखें। वाकई में दूर से ही एक पेड़ के नीचे तीनों घास पर उकड़ू बैठे दिखाई दिए। 'कर क्या रहे हैं ये लोग?' सोचकर दोनों ने तेज़ी से कदम बढ़ाए तो देखा कि पाइप डालने के लिए जो लंबी खुदाई करके मज़दूर डाल गए थे, वह जगह पानी से लबालब भरी थी और माँ बच्चों के साथ उसमें कागज़ की नाव तैरा रही थीं, बच्चे नाव के हिलते-डुलते आगे बढ़ने को मुग्ध होकर देख रहे थे और माँ होंठों ही होंठों में कुछ गुनगुना रही थीं। पत्नी एकबार को घबरा गई थी कि बच्चे कहीं उस खड्ड में गिर न जाएँ, उसने शिकायत और गुस्से की कड़ी निगाहों से पति को देखा, पति मुग्ध भाव से तीनों को देख रहा था, कितने मगन, कितने निश्चिन्त, कितने खुश! बूँदा-बाँदी की फिक्र से परे, घड़ी के समय की सोच के बाहर! उसे अपना बचपन याद आया जब माँ उसके साथ कागज़ की नाव बनाकर तैराती थीं। माँ वही थीं, बच्चे बदल गए थे।

उसने अपनी छतरी नीचे रखी और माँ के पास धीरे से जाकर बैठ गया। माँ ने चौंककर उसे देखा, एक पल हड़बड़ाई जैसे कुछ गलत करते पकड़ ली गई हो फिर बेटे के चेहरे में पुरानी परछाईं देख सहज हो आई, पलटकर देखा तो बहू स्तब्ध सी खड़ी थी, उसके शहरी संस्कार शायद पाँव रोक रहे थे। माँ ने सहज हाथ बढ़ाकर उसे बुलाया, तब तक बच्चे भी माँ को देख खुशी से उससे लिपट गए और वह अनायास ही उनके नन्हे हाथों के खिचाँव पर साथ आ बैठी, पानी पर कागज़ की कुछ नन्हीं कश्तियाँ हिलती डुलती चली जा रही थीं, बूँदा-बाँदी और घड़ी की टिक-टिक से बाहर! उन्हें ताकती कई जोड़ी आँखों में बचपन का उल्लास तैर रहा था। ■

सत्या शर्मा

फटी चुन्नी

सीमा जो मात्र 14 साल की रही थी ,बैठकर सिल रही है अपनी इज्जत की चुन्नी को आँसुओं के धागे और बेबसी की सुई से।

कल ही लौटी बुआ के घर से। वहाँ जाते वक्त सुरमई सी कौमार्य को ओढ़कर गई थी। पर आते वक्त सब कुछ बिखर गया था।

बड़े मान से बुआ ने बुलाया था प्रसव के दिन नजदीक आ रहे थे। बुआ फिर से माँ बनने वाली थी ,पहले से वह इक प्यारी सी तीन साल की बिटिया की माँ थी।

वहाँ वह हँसती खिलखिलाती बुआ का सारा काम करती, फूफा जी भी बात -बेबात उसे प्यार करते रहते।

सीमा खुश हो जाती पिता तुल्य वात्सल्य से भरा प्यार। पर कभी- कभी चौंक जाती पापा तो ऐसे प्यार नहीं करते। ऐसे नहीं छूते।

धीरे - धीरे हँसी खोने लगी ,उदासी की परत चढ़ने लगी उसकी मासूमियत पर।

बुआ पूछती क्या हुआ मन नहीं लग रहा है देखो फूफा जी कितना मानते हैं जाओ साथ में कहीं घूमके आ जाओ।

पर सीमा बुआ को कभी उस 'मरदाना प्यार' के बारे में नहीं बता पाई।

कभी- कभी सोचती चीख -चीखकर बता दे सबको ,पर बुआ की गृहस्थी का क्या जो फिर एक और बेटी की माँ बन, लोगों के ताने झेल रही है।

कौन उठाएगा बुआ और उनकी दोनों बेटियों का बोझ।

माँ तो खुद अनाथ बुआ को देखना नहीं चाहती।

और वह बहुत शिद्दत से सिलने लगती है अपनी फटी चुन्नी। ■

सन्तोष सुपेकर

आर्द्रता

बहुत समय से लगातार तेज गति से चल रही ट्रेन शाम चार-पाँच बजे के आसपास एक छोटे से स्टेशन पर देर तक रुक गई तो यात्रियों ने राहत सी महसूस की। हमारे कोच के कुछ यात्री तो खिड़की-दरवाजों से बाहर झाँकने लगे, तो कुछ बाहर खड़े होकर धूम्रपान, तंबाकू, मोबाइल फोन, पानी भरने आदि में व्यस्त हो गए। बाहर घने बादल छाए हुए थे और आसपास ढेर सारे हरे-भरे पेड़ होने के कारण मौसम बड़ा सुहावना प्रतीत हो रहा था।

"तू समझती क्या है अपने आपको?" अचानक हमारी तरफ आती जोरदार-गरजदार आवाज सुनाई दी, तो सब चौंककर उस दिशा में देखने लगे, एक छोटी- सी बंद छतरी हाथ में लिये एक आदमी, साथ चल रही एक औरत (जो कि उसकी पत्नी थी) को बुरी तरह डाँटता-फटकारता ट्रेन की दिशा में चला आ रहा था, "पहले तेरे भाई ने मेरा मजाक उड़ाया तब तूने उसका साथ दिया। अभी परसों तेरी भाभी ने मेरी इंसल्ट की, तब भी तू चुप रही। ध्यान रखना, मैं उनकी भी अक्ल ठिकाने लगा दूँगा और तेरी भी..." उसका गुस्सा इतना बढ़ता जा रहा था लगा जैसे कुछ देर में औरत को पीटने लगेगा। औरत जार-जार रोती हुई तेज कदमों से पति के साथ-साथ चलती जा रही थी।

जैसे स्वादिष्ट पकवान खाते हुए मुँह में कोई कंकड़ आ गया हो, गरजती-बरसती वह आवाज सुनकर और ऐसा माहौल देखकर इतने खूबसूरत

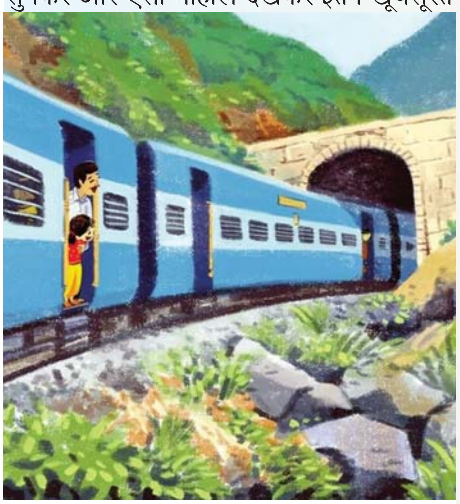

मौसम में भी हम देखने वालों के मुँह कड़वे हो आए। तभी जोरदार बारिश चालू हो गई। बाहर खड़े यात्री अचकचाकर कोच के अंदर आने लगे। कोच के खिड़की-दरवाजों के काँच गिराए जाने लगे। उसी समय बाहर का दृश्य देखकर हमारे हालिया तल्खी से भरे चेहरे सामान्य हो गए, होठों पर मुस्कान आ गई।

सब उँगली उठाकर एक-दूजे को बाहर का दृश्य दिखाने लगे।

हमने देखा कि बारिश चालू होते ही लड़ते-झगड़ते, औरत को मारने पर उतारू, उस आदमी ने छतरी खोलकर औरत के सिर पर तान दी थी और खुद पूरी तरह भीगता हुआ उसके साथ-साथ चल रहा था। हालाँकि उसका डाँटना-फटकारना एवं औरत का रोना-धोना अब भी जारी था,लगातार ...। ■

मानुस -गंध

सरोज परमार

हवा में हल्की सी सरसराहट और हलचल महसूस हुई। नहीं, यह सिर्फ़ हवा का झोंका नहीं था। इसमें मानुस-गंध घुली थी। जो लोग प्रतिदिन, प्रतिपल इसके सम्पर्क में रहते हैं, वे इसे भूल सकते हैं। बल्कि भूल जाते हैं। पर वे इसे पहचानने में कैसे भूल कर सकती हैं, जिन्हें बहुत-बहुत दिन हो जाते हैं इसकी कमी के अहसास को जीते और तब कुछ पल हासिल होते हैं, इसे महसूस करने के।हँसते,बोलते,सुनते, 'गंध भरे' कुछ पल।

तथाकथित रिश्तों में से महीने में एकाध बार कोई आता है। बाज़ार से ज़रूरत के सामान की व्यवस्था करने। (बाकी काम वे अपने कराहते-काँपते शरीर से करने को बाध्य करती हैं) और उस 'व्यवस्था- दिवस' के आने में अभी पूरे बीस दिन का इन्तज़ार बाकी है। सुबह ही तो उन्होंने गिना है। फिर यह कौन.....

आँखें कमज़ोर सही, पर उस झुटपुट अँधेरे में गौर से देखा, तो नज़र आ ही गया। सचमुच में एक जीता जागता इंसान! बरबस ही उनके चेहरे पर कर्णचुम्बी मुस्कुराहट फैल गई।

भय, आतंक, निरीहता देखने के आदी लुटेरे की विमूढ़ दृष्टि देख रही थी-कभी अपने हाथ के हथियार को और कभी उस अजनबी चेहरे की स्वागतपूर्ण हार्दिक मुस्कुराहट को। ■

सविता पाण्डे

कैमिकल लोचा

जाने कौन- सा केमिकल लोचा घट रहा था चंपा के अंदर कि वह बसा बसाया घर और भोलेराम को छोड़कर 'किसी और' के साथ चली गई थी!! और तो और, बच्चों का भी नहीं सोचा! जाने क्यूँ तो अचानक ही घर छोड़ गई थी चंपाकली! 'फलाँ की पत्नी फलाँ के साथ फरार! वाली खबरें तो बहुत पढ़ीं थीं भोलेराम ने; लेकिन चंपा के लिए इस तरह 'फरार' या 'फुर्र' होने जैसे शब्दों का प्रयोग करना बिल्कुल पसंद नहीं आता था उसे। आखिर पत्नी रही थी उसकी। कैसे तो उसे क्रोध भी नहीं आया चंपा पर। भावहीन- सा हो गया था। हाँ! हर शाम चंपा की नई गृहस्थी जरूर देखता। शाम ढले भोलेराम हर रोज रिक्शा चला लेने के बाद चंपा की गृहस्थी को दूर से निहारता रहता। आखिर कुछ दिनों पहले तक दोनों साथ ही तो रहते थे। वैसी ही ईंट और टाट की झोंपड़ी, वैसे ही नगर-निगम के नलके से पानी ढो- ढोकर लाना और उस जैसा ही रिक्शा चलानेवाला आदमी! भोले को कोई अंतर ही नहीं दीखता; लेकिन हर शाम चंपा के नए घर में ताक- झाँक की उसकी आदत ने उसे भी चंपा की गृहस्थी का एक हिस्सा बना दिया था। तभी तो लगातार कई दिनों से एक ही साड़ी पहने चंपा की कपड़ों की कमी पहचान गया वह। अपनी झोंपड़ी में आ चंपा के बक्से को खोला।एक ही कपड़े में चली गई थी पगली! भोला के चेहरे पर हल्की मुस्कुराहट फैल गई। चंपा के सारे कपड़े बाँध उसके नए घर पहुँच गया- "हर रोज एक ही साड़ी मत पहना करो।"

चंपा ने भोलेराम को यूँ अचानक आया देखा, तो सकते में आ गई। उसे जल्दी वापस चले जाने को कहा। भोलेराम ने चंपा को उसकी साड़ियों की पोटली थमाई और यूँ छुपकर निकल भागा जैसे उसका कोई नया प्रेमी हो! ■

सुदर्शन रत्नाकर

कुछ नहीं ख़रीदा

वह बीच पर बैठी लहरों को उठते-गिरते देख रही थी। सैंकड़ों सैलानी अलग-अलग क्रीड़ाओं का आनन्द ले रहे थे। कई घूम रहे थे, कई धूप का सेवन कर रहे थे। उस द्वीप का मूल निवासी दो घंटे तक बीच का चक्कर लगाता रहा। कुछ लोगों ने उससे स्टोल और मालाओं के दाम पूछे पर ख़रीदा कुछ नहीं। एक घंटे बाद वह फिर आया। उसने क़ीमत आधी कर दी थी। लेकिन किसीने तब भी कुछ नहीं ख़रीदा। साँझ ढलने से पहले वह एक बार फिर आया। इस बार उसने क़ीमत और भी कम कर दी। अब बहुत सारे लोगों ने उसका सामान ख़रीद लिया था। पर वह कह रहा था कि उसने वस्तुओं की सिर्फ़ लागत ली है। उसे लाभ कुछ भी नहीं हुआ।

लाखों का ख़र्चा कर के इस टापू पर आकर मनोरंजन करने वाले सैलानी यहाँ की कला को नहीं ख़रीद सकते। मूल निवासियों की सहायता नहीं कर सकते। उसे बहुत अचरज हो रहा था। अनायास ही उसके मुख से निकला, ''कितने ओछे हैं लोग।''

उसका बारह वर्षीय बेटा भी वहीं खेल रहा था, बात सुनकर बोला, ''आपने भी तो कुछ नहीं ख़रीदा मम्मा।'' ■

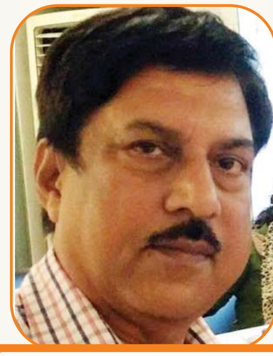

सुभाष नीरव

धूप

चौथी मंज़िल पर स्थित अपने कमरे की खिड़की से उन्होंने बाहर झाँका। कार्यालय के कर्मचारी लंच के समय, सामने चौराहे के बीचों बीच बने पार्क की हरी-हरी घास पर पसरी सर्दियों की गुनगुनी धूप का आनंद ले रहे थे। उन्हें उन सबसे ईर्ष्या हो आई। और वह भीतर ही भीतर खिन्नाए, कैसी बनी है यह सरकारी इमारत! इस गुनगुनी धूप के लिए तरस जाता हूँ मैं।...

उन्हें अपना पिछला दफ़्तर याद हो आया। वह राज्य से केंद्र में प्रतिनियुक्ति पर आए थे। कितना अच्छा था वह ऑफ़िस-सिंगल स्टोरी! ऑफ़िस के सामने खूबसूरत छोटा-सा लॉन! लंच के समय चपरासी स्वयं लॉन की घास पर कुर्सियाँ डाल देता था- अफ़सरों के लिए। ऑफ़िस के कर्मचारी दूर बने पार्क में बैठकर धूप का मज़ा लेते थे। पर, यहाँ ऑफ़िस ही नहीं, सरकार द्वारा आवंटित फ़्लैट में भी धूप के लिए तरस जाते हैं वह। तीसरी मंज़िल पर मिले फ़्लैट पर किसी भी कोण से धूप दस्तक नहीं देती।

एकाएक उनका मन हुआ कि वह भी सामने वाले पार्क में जाकर धूप का मज़ा ले लें। लेकिन उन्होंने अपने इस विचार को तुरंत झटक दिया। अपने मातहतों के बीच जाकर बैठेंगे। नीचे घास पर! इतना बड़ा अफ़सर और अपने मातहतों के बीच घास पर बैठे!

वह खिड़की से हटकर सोफ़े पर अधलेटे-से हो गए। और तभी उन्हें लगा, धूप उन्हें अपनी ओर खींच रही है। वह बाहर हो गए हैं। बिल्डिंग से। चौराहे के बीच बने पार्क की ओर बढ़ रहे हैं वह। पार्क में घुसकर बैठने योग्य कोई कोना तलाश करने लगती हैं उनकी आँखें। पूरे पार्क में टुकड़ियों में बँटे लोग। कुछ ताश खेलने में मस्त हैं, कुछ गप्पें हाँक रहे हैं, कुछ मूँगफली चबा रहे हैं। गप्पे हाँकते लोग एकाएक चुप हो जाते हैं। लेटे हुए लोग उठकर बैठ जाते हैं। उनके पार्क में बैठते ही लोग धीमे-धीमे उठकर

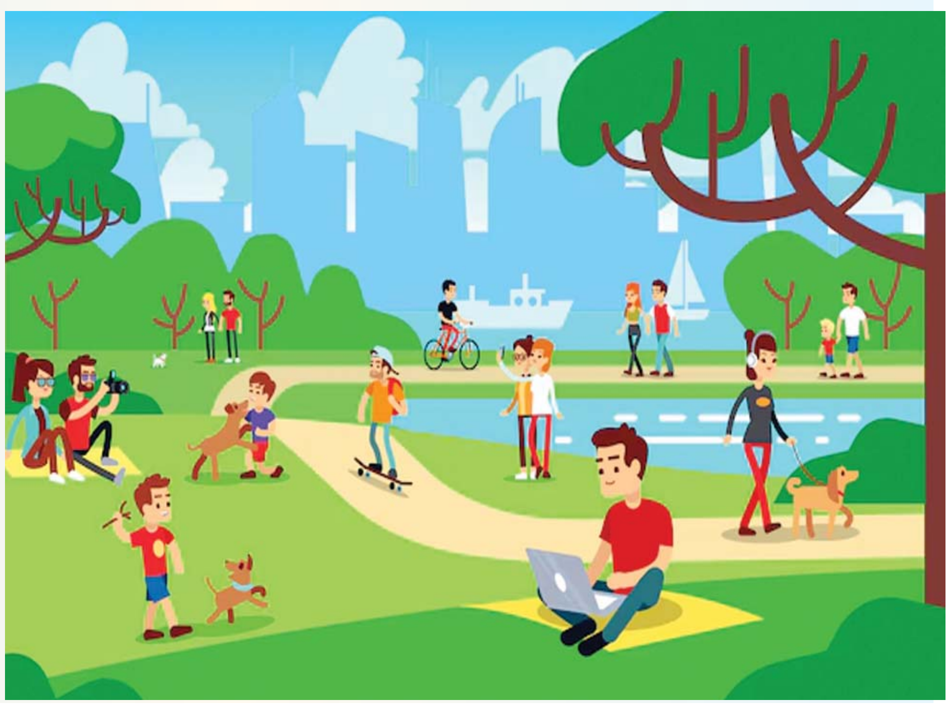

खिसकने लगते हैं। कुछ ही देर में पूरा पार्क खाली हो जाता है और बचे रहते हैं– वही अकेले।

अचानक उनकी झपकी टूटी। उन्होंने देखा, वह पार्क में नहीं, अपने ऑफ़िस के कमरे में हैं। उन्होंने घड़ी देखी, अभी लंच समाप्त होने में बीस मिनट शेष थे। वह उठे और कमरे से ही नहीं, बिल्डिंग से भी बाहर चले गए। पार्क की ओर उनके कदम खुद-ब-खुद बढ़ने लगे। एक क्षण खड़े-खड़े बैठने के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढने लगे। उन्हें देख लोगों में हल्की-सी भी हलचल नहीं हुई। बस, सब मस्त थे। लोगों ने उन्हें देखकर भी अनदेखा कर दिया था। वह चुपचाप एक कोने में अपना रूमाल बिछाकर बैठ गए। गुनगुनी धूप उनके जिस्म को गरमाने लगी थी। पिछले दो सालों में यह पहला मौका था, सर्दियों की गुनगुनाती धूप में नहाने का।

लंच खत्म होने का एहसास उन्हें लोगों के उठकर चलने पर हुआ। वह भी उठे और लोगों की भीड़ का एक हिस्सा होते हुए अपने ऑफ़िस में पहुँचे। अपने कमरे में पहुँचकर उन्हें वर्षों बाद खोई हुई किसी प्रिय वस्तु के अचानक प्राप्त होने की सुखानुभूति हो रही थी। ■

हरभगवान चावला

थाप

माँ-बेटी कभी किसी खेत में कपास चुगने जातीं, तो कभी किसी के घर में लिपाई करतीं, शादी ब्याह में बर्तन धोतीं। गाँव के पशु जब पानी पीने के लिए जोहड़ की तरफ़ जाते, तो बेटी उनका गोबर बटोरने के लिए तसला लेकर गलियों में निकल जाती। गोबर से माँ-बेटी उपले बनातीं और बेचतीं। माँ को विधवा पेंशन मिलती थी। कभी खाना बन जाता, तो कभी फ़ाका होता। जैसे-तैसे गुज़र हो रहा था। इन हालात में भी बेटी पूरी मेहनत से अपनी पढ़ाई कर रही थी। वह माँ को देखती, तो यह सोचकर भावुक हो जाती कि माँ को ज़िंदगी में कभी सुख नहीं मिला। तब वह और ज़्यादा तन्मयता से पढ़ाई में जुट जाती।

उस दिन उसने जेसे ही तसले का गोबर आँगन में पटका, उसे कमरे के भीतर से किसी चीज़ के गिरने का अहसास हुआ। भीतर पहुँची, तो देखा, माँ चारपाई पर चित्त पड़ी है। घबराहट में उसने माँ को हिलाया, फिर पानी ले आई। पानी के छींटे माँ के मुँह पर मारे, तो माँ ने आँखें खोल दीं और बावलों की तरह इधर-उधर देखने लगी।

''क्या हुआ माँ, चक्कर आ गया था ?'' उसने पूछा, तो माँ ने इन्कार में सिर हिला दिया।

''फिर क्या हुआ ?'' माँ ने पास पड़े मोबाइल फोन की ओर इशारा किया, तो बेटी ने लपककर फोन उठाया। सबसे ताज़ा कॉल दीपक की थी। दीपक उसका सहपाठी था। उसने दीपक को फोन मिलाया। फोन मिलते ही दीपक का चहकता स्वर सुनाई दिया,''बहुत-बहुत बधाई अंजलि!''

''किस बात की बधाई ?''

''ओहो, जैसे कि कुछ पता ही नहीं! मत खिलाना मिठाई, बधाई तो स्वीकार करो।''

''पहेलियाँ मत बुझाओ, जल्दी बताओ, किस बात की बधाई दे रहे हो ?''

''अच्छा, तो तुम्हें सचमुच मालूम नहीं। तो सुनो, सब इंस्पेक्टर अंजलि, तुम्हारा पुलिस में सिलेक्शन हो गया है, थोड़ी देर पहले परिणाम घोषित हुआ है।''

''सच ?''

''एकदम सच! मैंने थोड़ी देर पहले भी फोन किया था। उस समय इतने उत्साह में था कि ढोल पर दनादन थापें मारना चाहता था। फोन तुम्हारी माँ ने उठाया। उन्होंने समाचार सुना, पर कुछ भी नहीं बोलीं।''

''बोलती कैसे ? समाचार सुनते ही बेहोश होकर गिर गई थी।''

''ओह, वह क्यों भला ? यह तो अच्छी ख़बर थी।''

''अच्छी ख़बर थी, तभी तो गिरी। उसने हमेशा बुरी ख़बरें ही सुनी हैं। इतनी खुशी भला कैसे बरदाश्त करती ? ढोल के शीर्ण पर्दे पर ज़ोरदार थाप पड़ेगी, तो पर्दा फटे भले ही न, उखड़कर गिर तो ज़रूर जाएगा।'' ■

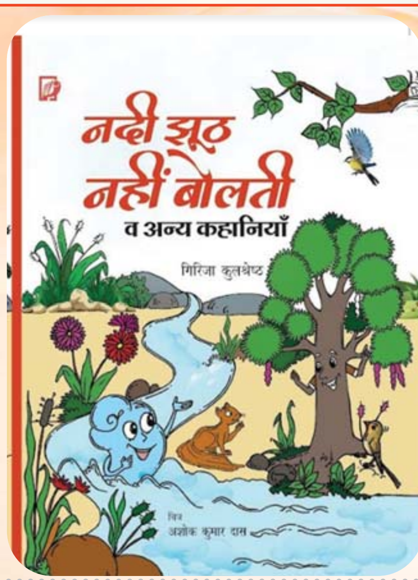

नदी झूठ नहीं बोलतीः गिरिजा कुलश्रेष्ठ

चित्र- अशोक दास, प्रकाशक- प्रवासी प्रेम पब्लिशिंग, इंडिया, पृष्ठः 72, मूल्यः रुपये 270.00

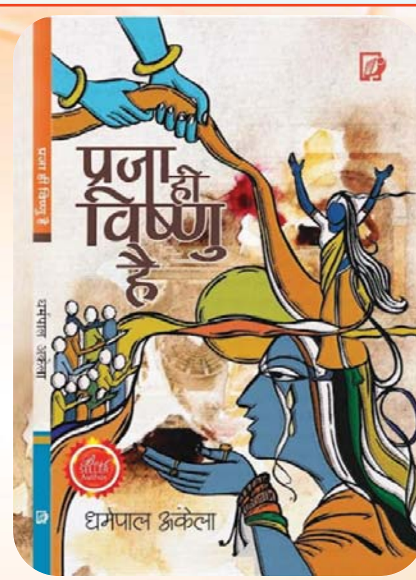

प्रजा ही विष्णु हैः धर्मपाल अकेला

प्रवासी प्रेम पब्लिशिंग, इंडिया, राजेन्द्र नगर, गाजियाबाद, पृष्ठ : 66, रुपये 260.00

लघुकथा की सृजन-प्रक्रिया

[लघुकथा के व्यावहारिक रूप को समझने के लिए यह स्तम्भ आरम्भ किया है; ताकि सजग लेखक कुछ चर्चित लेखकों के गुणात्मक सृजन को समझ सकें। 'कार चलाना सीखें' पुस्तक पढ़कर कार चलाना नहीं सीख सकते। अच्छे लेखकों ने उत्कृष्ट लघुकथाओं का सृजन कैसे किया है, उसे पढ़कर, रचनाकार अपने अन्तर्मन में अपनी ही प्रविधि को जाग्रत और विकसित करें। दस पड़ोसियों से पूछकर शीर्षक, समापन, शैली आदि नहीं अपनाई जा सकती। स्वयं के अनुभव, चिन्तन, ग्रहणशीलता और संयोजन से उसे परिमार्जित करना और विस्तार देना है।]

सुकेश साहनी

लघुकथा 'स्कूल' की रचना- प्रक्रिया

कथा की विषयवस्तु, लेखकीय दृष्टि एवं उससे सम्बंधित विचार मिलकर मुकम्मल रचना का रूप लेते हैं। मैंने यहाँ जानबूझकर रचना अथवा कथा शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि उपर्युक्त कथन साहित्य की किसी भी विधा के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अधिकतर रचनाओं की विषयवस्तु हमें जीवन की हलचल से मिलती है। देखने में आ रहा है कि आज लिखी जा रही बहुत-सी लघुकथाओं में सिर्फ़ विषयवस्तु, घटना या एहसास का ब्योरा मात्र होता है। लघुकथा का भाग बनने के लिए ज़रूरी है कि इस घटना, एहसास या विचार को दिशा और दृष्टि मिले, लेखक उस पर मनन करे, उससे सम्बन्धित विचार भी उसमें जन्म लें। कोई स्थिति, घटना, एहसास या विचार ही हमें लिखने के लिए प्रेरित करता है। इसे हम किसी रचना के लिए कच्चा माल भी कह सकते हैं। वस्तुत: कच्चे माल के पकने की प्रक्रिया ही विषयवस्तु या घटना को दृष्टि मिलना है। लेखक के भीतर किसी रचना के लिए आवश्यक कच्चे माल के पकने की प्रक्रिया ही लेखक की रचना-प्रक्रिया है। मेरी दृष्टि में लघुकथा की रचना-प्रक्रिया में उपन्यास एवं कहानी की भाँति बरसों भी लग सकते हैं।

लघुकथा की रचना-प्रक्रिया के दौरान लेखक को आकारगत लघुता एवं समापन-बिन्दु को ध्यान में रखकर ही ताने-बाने बुनने पड़ते हैं और यहीं लघुकथा की रचना-प्रक्रिया के दौरान ही पात्रों के चयन एवं लघुकथा के लिए उपर्युक्त स्थल पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। कभी-कभी कोई संवाद किसी भी पात्र से कहलवा देने से लघुकथा का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। वहीं इस बिन्दु पर किया गया अतिरिक्त मनन हमें उस संवाद को किसी बच्चे के मुँह से कहलवाने के निष्कर्ष पर पहुँचा सकता है। जिससे लघुकथा का प्रभाव और भी व्यापक हो जाता हो।

अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। मैं और भाई रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जी दिल्ली से बरेली लौट रहे थे। रेल-ट्रेक में किसी खराबी के कारण हमारी ट्रेन चंदौसी स्टेशन पर पहुँच गई थी। हमें चंदौसी स्टेशन पर पाँच घंटे व्यतीत करने पड़े थे। वहाँ प्रतीक्षालय में बहुत से कॉलेज के लड़के जमा थे। वे जुआ खेल रहे थे, अश्लील चुटकुले सुना रहे थे, वहीं आस-पास के माहौल से बेख़बर एक स्कूली लड़का अपना होमवर्क पूरा करने में जुटा था। मैंने उससे बातचीत की थी। उसने बताया था कि वह पास के गाँव से रोज़ पढ़ने आता है। अन्य डेली पैसेंजर्स की तरह वह भी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने यह भी बताया था कि घर में केवल उसकी माँ है। पिता बंबई में कहीं नौकरी करते हैं और साल में एक बार घर आते हैं, जुआ खेलते कॉलेज के लड़कों के बीच कच्ची उम्र के इस लड़के के संतुलित व्यवहार ने मुझे सोचने पर विवश कर दिया था। मुझे उसी समय लगा था, किसी लघुकथा के लिए कच्चा माल मिल गया है। कुछ महीनों बाद इस स्थिति पर मैंने 'स्कूल' लघुकथा लिखी-

1-स्कूल

"तुम्हें बताया न, गाड़ी लेट है," स्टेशन मास्टर ने झुँझलाते हुए कहा- "छह घंटे से पहले तो आ नहीं जाएगी, अब जाओ... कल से नाक में दम कर रखा है तुमने!"

"बाबूजी, गुस्सा न हों," "वह ग्रामीण औरत हाथ जोड़कर बोली-मैं बहुत परेशान हूँ, मेरे बेटे को घर से गए हुए तीन दिन हो गए हैं...उसे कल ही आ जाना था! पहली दफ़ा घर से अकेला निकला है..."

"पर तुमने बच्चे को अकेला भेजा ही क्यों?" औरत की गिड़गिड़ाहट से पसीजते हुए उसने पूछ लिया।

"मति मारी गई थी मेरी," वह रूआँसी हो गई- "बच्चे के पिता नहीं हैं, मैं दरियाँ बुनकर घर का ख़र्चा चलाती हूँ। पिछले कुछ दिनों से ज़िद कर रहा था कि वह भी कुछ काम करेगा। टोकरी-भर चने लेकर घर से निकला है..."

"घबराओ मत...आ जाएगा!" -उसने तसल्ली दी।

"बाबूजी... वह बहुत भोला है, उसे रात में अकेले नींद भी नहीं आती है...मेरे पास ही सोता है। हे भगवान!...दो रातें उसने कैसे काटी होंगी? इतनी ठंड में उसके पास ऊनी कपड़े भी तो नहीं हैं..." - वह सिसकने लगी।

स्टेशन मास्टर अपने काम में लग गया था। वह बेचैनी से प्लेटफार्म पर टहलने लगी। उस गाँव के छोटे से स्टेशन पर चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। उसने मन ही मन तय कर लिया था कि भविष्य में वह अपने बेटे को कभी भी अपने से दूर नहीं होने देगी। आख़िर पैसेंजर ट्रेन शोर मचाती हुई उस सुनसान स्टेशन पर आ खड़ी हुई। वह साँस रोके, आँखें फाड़े डिब्बों की ओर ताक रही थी।

एक आकृति दौड़ती हुई उसके नज़दीक आई। नज़दीक से उसने देखा-तनी हुई गर्दन... बड़ी-बड़ी आत्मविश्वास भरी आँखें...कसे हुए जबड़े...होंठों पर बारीक मुस्कान...

"माँ, तुम्हें इतनी रात गए यहाँ नहीं आना चाहिए।" अपने बेटे को गंभीर, चिंताभरी आवाज़ उसके कानों में पड़ी।

वह हैरान रह गई। उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था-इन तीन दिनों में उसका बेटा इतना बड़ा कैसे हो गया?

यदि इस लघुकथा की मूल घटना से तुलना करें, तो पता चलता है कि रचना-प्रक्रिया के दौरान इसमें घटना-स्थल, क्रम, पात्र आदि बिल्कुल बदल गए हैं। ऐसा लघुकथा के लिए अनिवार्य आकारगत लघुता एवं समापन बिन्दु को ध्यान में रखते हुए अधिक प्रभावी प्रस्तुति के लिए किया गया है। ■

श्याम सुन्दर अग्रवाल

लघुकथा 'माँ का कमरा' की रचना- प्रक्रिया

कोई भी रचना लिखने के लिए कच्चा माल कहीं न कहीं से तो मिलता ही है। व्यक्ति का सबसे करीबी रिश्ता माँ से ही होता है। मेरा माँ से कुछ अधिक लगाव ही रहा। जब से होश सँभाला, माँ को बहुत अधिक परिश्रम करते देखा। वह भोर होने से पहले उठ जाती और देर रात तक काम में लगी रहती। चक्की में गेहूँ पीसने से उसकी दिनचर्या शुरू होती। घर की साफ-सफाई, कुएँ से पानी लाना, भोजन बनाना, कपड़े धोना सभी काम उसके जिम्मे थे। रात को दादी के पाँव दबाने के बाद ही वह सोने के लिए जाती। घर में सबसे अधिक काम करने वाली माँ को सब से कम सुविधाएँ मिलती। अन्याय भी उसीके साथ अधिक होता। तभी से मन में एक बात बैठ गई थी कि बड़ा होकर मैं माँ के साथ न्याय करूँगा। उस पर काम का बोझ नहीं डालूँगा और उसे सभी सुविधाएँ दूँगा।

मात्र चौदह वर्ष की उम्र में ही मुझे परिवार से अलग रहना पड़ा। घर में मैं था और साथ में थी माँ। स्कूल-फीस और रोटी-कपड़े का प्रबंध मुझे ही करना था। मुझे इस सबके लिए बहुत पसीना बहाना पड़ा, लेकिन मैने माँ को घर से बाहर का कोई काम नहीं करने दिया।

समय के साथ हालात बदले। मैने शहर की पॉश कालोनी में एक अर्ध-निर्मित मकान खरीद लिया। मकान खरीदने से लेकर उसमें निर्माण कार्य शुरू करवाने तक मेरे मस्तिष्क में माँ ही घूमती रही। माँ तब तक बूढ़ी हो गई थी, दिखाई भी कम देता था और लाठी का सहारा भी ले लिया था। उसे अपनी किसी भी ज़रूरत के लिए अधिक नहीं चलना पड़े। सभी सुविधाएँ उसके कमरे में हों, सदा यही सोचता रहता।

बहुत से लोग ऐसे देखे, जो वृद्ध माँ को योग्य सम्मान नहीं देते थे। कुछ तो बूढ़े माँ-बाप से बहुत दुर्व्यवहार करते थे। कुछेक को तो बूढ़ी माँ से नौकरों की तरह काम लेते देखा। ऐसे सभी लोग मेरे लिए घृणा के पात्र रहे।

बस इन्हीं सब बातों ने मुझे लघुकथा 'माँ का कमरा' लिखने के लिए प्रेरित किया।

[लघुकथा सन्दर्भित रचनाओं में पढ़ी जा सकती है] ■

हरभगवान चावला

लघुकथा 'बीज (दरिंदगी के बरक्स ज़िंदगी)' की रचना- प्रक्रिया

साहित्य को लेकर मेरी कुछ मान्यताएँ हैं, आप इन्हें मेरे पूर्वाग्रह भी कह सकते हैं :

पहली : साहित्य मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है।

दूसरी : साहित्य वंचित एवं पीड़ित का पक्षधर होता है।

तीसरी : साहित्य धर्म, जाति, नस्ल, लिंग, क्षेत्र, भाषा या अन्य किसी भी कारण से होने वाले अन्याय अथवा भेदभाव का प्रतिरोध करता है।

चौथी : साहित्य सत्ता के साथ क़दमताल नहीं करता।

मैं लघुकथा कैसे लिखता हूँ (यानी रचना प्रक्रिया) से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, मैं लघुकथा क्यों लिखता हूँ? मैंने कविताएँ लिखी हैं,

कहानियाँ लिखी हैं, आजकल एक उपन्यास पर भी काम कर रहा हूँ। उपन्यास बहुत अधिक समय, मेहनत और धैर्य की माँग करता है। कहानी भी पकने में समय लेती है। कविता और लघुकथा अपेक्षाकृत कम समय लेती हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि ये आसान विधाएँ है। मैंने कई गोष्ठियों में सुना है कि आजकल लोगों के पास समय कम है, इसलिए लघुकथा सबसे ज़्यादा पढ़ी जाने वाली विधा है। मैं कहता हूँ क्षमा कीजिए, लघुकथा सबसे ज़्यादा देखी जाने वाली (अर्थात् पढ़ते ही भूल जाने वाली) विधा है, सबसे ज़्यादा पढ़ी जाने वाली विधा आज भी उपन्यास है। कितनी लघुकथाएँ है, जो हमें याद रह गई हैं? याद न रहने का कारण है कि आज हिंदी में चुटकुलानुमा तथा फ़ॉर्मूलाबद्ध लघुकथाओं की भरमार है। असल में जो कुछ नहीं लिख सकते, उन्हें भी लगता है कि लघुकथा तो लिख ही लेंगे; इसीलिए लघुकथाओं के अंबार लगे हैं।

लघुकथा एक गंभीर विधा है। कुछ विषय ऐसे होते हैं, जिनका कलेवर लघु, पर संदेश बड़ा होता है। ऐसे विषय ही मुझे लघुकथा लिखने पर बाध्य करते हैं। कौन- सा विषय या कौन-सी घटना, मेरी लघुकथा का कथानक बनेगी, यह इस बात पर निर्भर है कि वह घटना या वह विषय मेरी साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं पर खरा उतरता है या नहीं। विषय ही यह तय करता है कि उसे किस विधा में ढालना उचित होगा। रचना- प्रक्रिया की अगर बात करूँ, तो कहना होगा कि मेरी हर रचना का प्रस्थान बिंदु एक ख़ास तरह की बेचैनी है और प्राय: यह बेचैनी किसी अन्याय से उत्पन्न होती है। कोई विचार, घटना या ख़बर पहले धुंध की तरह मन पर छाते है, फिर उस धुंध में एक रास्ता दिखने लगता है। हर समय यह रास्ता दिखे ही, यह ज़रूरी नहीं। सृजन के भी क्षण होते हैं। आप जब चाहें, तब लिख ही दें, यह संभव नहीं। मेरा ख़याल है कि सृजन के ये क्षण यूँ ही हाज़िर नहीं हो जाते। किसी के अनुभव या त्रासदी या उम्मीद को जब लेखक ख़ुद जीने लगता है, तब रचना का रास्ता हमवार होने लगता है।

'बीज' लघुकथा के परिप्रेक्ष्य में

अफ़ग़ानिस्तान में जब तालिबानी निज़ाम क़ायम हुआ, तो ज़िंदगी की स्वाभाविक गति अवरुद्ध हो गई। कुछ उन्मादी लोगों को दिली ख़ुशी हुई, तो अधिकतर लोगों की ज़िंदगी दुश्वार हो गई। समता, स्वतंत्रता तथा सद्भाव जैसे मूल्यों को तानाशाही निज़ाम ने बलि चढ़ा दिया। धर्मांधता अभिशाप है और इस अभिशाप का सबसे आसान और अनिवार्य शिकार औरत होती है। पितृसत्तात्मक धर्म और परंपराएँ औरत को संपत्ति की तरह देखती हैं और सबसे पहले उन्हीं पर नियंत्रण करती हैं। तालिबानी निज़ाम स्थापित होने के बाद, औरतों पर ज़ुल्म की बहुत सी कहानियाँ सामने आईं। उनके लिए नक़ाब अनिवार्य कर दिया गया; उनकी शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया गया; संगीत, नृत्य जैसी कलाओं को उनके लिए वर्जित कर दिया गया। ज़ुल्म जैसे-जैसे बढ़े, प्रतिरोध और क्रोध भी वैसे-वैसे देखने में आया। ऐसी खबरें पढ़ने में आईं कि वहाँ की औरतों ने जान की परवाह किए बिना दरिंदगी के बरक्स ज़िंदगी का परचम लहराया। ऐसे में कुछ लघुकथाओं ने आकार लिया। हर लघुकथा पाखंड और अन्याय के विरुद्ध लड़ रही औरतों की जिजीविषा, साहस और मानवीय मूल्यों एवं सौंदर्य को बचाए रखने की उनकी आकांक्षा को स्वर देती है। 'दरिंदगी के बरक्स ज़िंदगी' शृंखला की दस कथाओं को 'कथादेश' ने छापा। यह 'बीज' लघुकथा उसी शृंखला की एक कथा है। महज़ ख़बर कथा नहीं होती। ख़बर को कथा होने के लिए कुछ पड़ावों से गुजरना होता है। ये पड़ाव हैं - भाषा, शिल्प, कल्पना, प्रतीक, बिंब, व्यंजना आदि उपकरण। लघुकथा में एक भी शब्द के अपव्यय की इजाज़त नहीं है। कथा की स्वीकार्यता में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका विषय की सार्थकता, विश्वसनीयता तथा लेखक के दृष्टिकोण की होती है। इस कथा में फूलों के बीज को ख़ुशहाली, सौन्दर्य तथा मानवीय संवेदना के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया गया है। अब यह तो पाठक तय करेंगे कि 'बीज' लघुकथा कैसी बन पड़ी है।

3-बीज (दरिंदगी के बरक्स ज़िंदगी)

सड़कों पर धर्मांध लड़ाकों की बंदूकें गरज रही थीं। सभी लोग घरों में दुबके थे। एक लड़ाके ने देखा - एक महिला सड़क के बीच खड़ी थी। लड़ाके को ग़ुस्सा आ गया, महिला का सड़क के बीचों-बीच निडर और अविचल खड़े होना उनके निज़ाम का अपमान था। उसने ऊँची आवाज़ में कहा, ''हमारे डर से कोई परिंदा भी पर नहीं मार रहा है, ऐसे में तुम यहाँ सड़क पर क्यों खड़ी हो?''

''तुमसे मिलने के लिए।''

''मुझसे? मुझसे क्या काम है तुम्हें?''

''एक नज़राना है तुम्हारे लिए।''- महिला ने एक बहुत छोटी सी पोटली उसकी तरफ़ बढ़ा दी।

''क्या है यह?''

''सूरजमुखी के बीज।''

''क्या करूँ मैं इनका?''

''अपनी जेब में रखना हमेशा।''

''क्यों?''

''तुमने आबे-हयात तो नहीं पिया है न! मरना तो तुम्हें भी है या नहीं?''

''मरना है, तो फिर? अपनी आई पर हर कोई मरता है। मेरी मौत से इन बीजों का क्या ताल्लुक़?''

''तुम जैसे लोग अपनी आई पर नहीं मरते। तुम किसी दिन अपने ही किसी साथी के हाथों यूँ ही सड़क पर मार दिए जाओगे और सड़क के किनारे ही लावारिस दफ़ना भी दिए जाओगे।''

''बहुत गुस्ताख़ हो तुम। चलो, अभी तुम्हारी गुस्ताख़ी को माफ़ किया, पर अब भी मुझे इन बीजों और मौत के बीच कोई ताल्लुक़ समझ में नहीं आया।''

''मैं समझाती हूँ। जब तुम दफ़न किए जाओगे, तो ये बीज भी तुम्हारे साथ ज़मींदोज़ हो जाएँगे। बारिश होगी, तो तुम्हारी क़ब्र पर सूरजमुखी के पौधे उगेंगे, फिर उन पर फूल लगेंगे। तुम नहीं जानते, हमारे मुल्क को फूलों की कितनी ज़रूरत है!'' ■

डॉ. सुषमा गुप्ता

लघुकथा 'अतीत में खोई हुई वर्तमान की चिट्ठियाँ' की रचना- प्रक्रिया

जीवन में घटित बहुत सी बातें आपके ज़ेहन के किस कोने में जाकर, कैसे रजिस्टर होती हैं, यह हमें खुद भी पता नहीं चलता। कभी बरसों बाद उस संदूक में से कोई बात यूँ उछलकर बाहर आती है कि उसका हमारी स्मृतियों में यूँ दर्ज़ होना हमें अचंभित कर देता है।

मेरा अधिकांश लेखन मेरे सपनों और कल्पना का मिला-जुला रूप है। कभी-कभी कोई घटना यथार्थ से भी जुड़ी होती है, जिसे मैं अपनी कल्पना से अलग आयाम तक ले जाती हूँ।

'अतीत में खोई हुई वर्तमान की चिट्ठियाँ', मेरे बचपन की स्मृति से जुड़ी हुई है। बचपन में मेरे साथ वाले घर में मुझसे छोटी उम्र का एक साथी हुआ करता था। उसके घर के बाहर काले शहतूत का पेड़ था। उसका आँगन अक्सर हरा काला हुआ रहता था। यह बात मुझे कोई 35 वर्षों बाद अचानक एक दिन याद आई। याद आई, तो मुस्कुराहट आई। वह चेहरा याद नहीं आया, जो साथी था ; पर शहतूत का पेड़ बेहिसाब याद आया। याद आया कि मैं उसे अक्षर ज्ञान सिखाने की कोशिश किया करती थी। इतनी छोटी उम्र में, 'मैडम जी' बनने का शौक बच्चों को अक्सर लग जाता है, शायद वही बात रही हो। ठीक-ठीक तो कुछ याद नहीं आया ; पर हाँ, वहाँ से यह लघुकथा ज़रूर अपने अस्तित्व में आई। कुछ और स्मृतियाँ थीं; सामने के घर में दिखने वाली दीदी की, जो अक्सर छज्जे पर खड़ी सामने देखती थी। उनकी चमकती हुई आँखें भी कौंधी ज़ेहन में, हालाँकि आज मैं यह नहीं बता सकती कि क्या यह मेरी कल्पना है या मैंने सच में उन्हें ऐसे देखा ही था।

35 वर्ष बहुत लंबा अरसा होता है। 35 वर्षों के बाद आपको कोई अचानक इस तरह से याद आए, तो हैरानी तो होती है। ईश्वर ने हमारी स्मृतियों में जाने कितने खाने बनाए हैं और उन खानों में जाने कितना कुछ महफ़ूज़ है। मेरा यह भी मानना है कि लेखन ईश्वर का दिया वरदान है। मन में बहुत लोगों के बहुत कुछ चलता है; पर जो कुछ चलता है, अगर हम उसे लिख पाएँ, अपनी स्मृतियों , कल्पना और यथार्थ को शब्दों में बुन पाए, तब कोई रचना जन्म लेती है?।

अपनी यह रचना मुझे इसलिए भी बेहद अज़ीज़ है कि इसमें यथार्थ, कल्पना और मेरी स्मृतियाँ सब जुड़ी हुई हैं। साथ ही जब हमारे भीतर की संवेदनशीलता हमारी कलम का मार्ग प्रशस्त करती है , तब अपने लिखे पर एक आश्वस्ति भी महसूस होती है। और फिर अतीत में खोई हुई वर्तमान की चिट्ठियाँ, एक दिन तो सही पते पर पहुँचती ही होंगी न! यह सही पते पर पहुँचना ही रचना का गन्तव्य है, उत्कर्ष है।

4-अतीत में खोई हुई वर्तमान की चिट्ठियाँ

चार साल की बच्ची का मन मासूम था। अपने घर की खिड़की से अक्सर वह सामने वाले घर की बालकनी में कुछ खेल होते देखती थी। एक रोज़ उसने सामने वाली दीदी से पूछा- ''आपने सामने क्या फेंका?''

दीदी के चेहरे की हवाइयाँ उड़ गईं। कुछ सोचकर उन्होंने कहा- ''वह सामने वाले घर में मेरा दोस्त रहता है। कभी मैं उसे कुछ कहना भूल जाती हूँ, तो इस तरह लिखकर संदेश दे देती हूँ। दोस्तों में ऐसे संदेश देना चलता रहता है।''

उस नन्ही बच्ची को यह बात बहुत सुंदर लगी। उसने नया-नया अक्षर-ज्ञान लेना शुरू किया था। उसका एक ही दोस्त था, साथ वाले घर में रहने वाला दो साल का नन्हा बंटी। वह सोचने लगी, उसको संदेश भेजती हूँ, पर यह सोचकर उदास हो गई कि उसको अभी पढ़ना नहीं आएगा। अगले ही पल यह सोचकर मुस्कुरा दी कि तो क्या हुआ, मैं ही पढ़कर सुना दूँगी।

उसने एक कागज़ पर जितने अक्षर सीखे थे, सब लिख दिए और अपने आँगन से उसके आँगन में फेंक दिया, फिर अपने गेट से निकलकर तेज़ी से उसके घर की तरफ़ गई। उसके आँगन में पड़ी अपनी चिट्ठी को देख, खुशी से चहकती हुई, उसके घर के अंदर गई।

वह टीवी के सामने बैठा कार्टून देख रहा था। लड़की ने उसका हाथ थामकर कहा- ''तेरे लिए कुछ है।''

नन्हे बंटी ने बाल-सुलभ जिज्ञासा से तुतलाहट भरी आवाज़ में पूछा- ''त्या?''

लड़की हाथ पकड़के उसको बाहर की तरफ़ खींचने लगी, ''आ दिखाती हूँ।''

छोटे-छोटे दो कंगारू फुदकते हुए बाहर आँगन की तरफ़ बढ़ गए। आँगन में शहतूत का पेड़ भी था, काले शहतूत का पेड़। चिट्ठी उड़कर उस पेड़ के नीचे जा गिरी थी।

हवा तेज़ थी। अनगिनत पके शहतूत, पेड़ के नीचे पड़े थे। काले धब्बों से ज़मीन पटी हुई थी। चिट्ठी उड़कर उन काले शहतूतों से लिपट गई थी। लड़की ने आहिस्ता से उसको उठाकर देखा। शहतूत के धब्बों से कागज़ जामुनी हो गया था और बहुत से अक्षर उस रंग में घुलकर काले हो, लुप्त हो चुके थे। बच्ची का मन बुझ गया। इतने मन से उसने वह चिट्ठी लिखी थी; हालाँकि उसको याद था कि उसने उसमें क्या लिखा है; पर...

इतनी छोटी उम्र में भी उसको यह तो पता था कि नन्हा बंटी उस चिट्ठी को पढ़ नहीं पाएगा, चिट्ठी उसी को पढ़कर सुनानी थी। उसके बावजूद खो गए शब्द उसके लिए किसी खोई हुई अपनी सबसे सुंदर गुड़िया से कम नहीं थे, जिसका दु:ख बहुत बड़ा था।

लड़की की नन्ही-नन्ही हिरनी-जैसी आँखों में बड़े-बड़े आँसू तैर गए। छोटा लड़का तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। वह टुकुर-टुकुर बस देख रहा था। जब छोटी लड़की रोने लगी, तो उस छोटे लड़के के दिल में भी कुछ हलचल हुई। उसने धीरे से उसको हिलाकर अपनी मीठी तोतली ज़ुबान में पूछा- ''त्या हुआ!''

काले जामुनी धब्बों से भरी हुई चिट्ठी, जो उस लड़की की नन्ही हथेली में रखी थी, उसने लड़के के आगे कर दी। लड़के को तब भी समझ ना आया कि हुआ क्या है। उसने फिर पूछा- ''त्या हुआ?''

लड़की ने मुट्ठी बंद की और अपने घर की तरफ़ दौड़ गई। सीधे अपने कमरे में जाकर बिस्तर पर फूट-फूट कर रोने लगी।

शब्दों के गुम जाने के बाद दिल टूटने की यह उसकी ज़िंदगी की पहली घटना थी। ■

अंजू निगम

अन्न

''पनीर की और सब्जी है क्या?'' निलेश ने माँ की ओर देखकर बोला।

पतीले की तली में बची सब्जी कटोरी में समेट माँ खाने ही जा रही थी कि निलेश की आवाज़ पर अपनी कटोरी उसकी ओर बढ़ा दी।

''ये है न! मैंने तो ख़त्म करने के चक्कर में समेट ली।''। माँ की ममता बोल उठी।

''और तुम कैसे खाओगी?'' निलेश के चेहरे पर नाराज़गी के भाव झलके।

''अरे! शाम को नाश्ता ज़्यादा हो गया था। मैंने कहा न, ख़त्म करने के चक्कर में कटोरी में परस ली थी।'' माँ ज़ोर देते बोली।

''पता नहीं आप रोज़ इतना नाप तौलकर क्यों बनाती हैं। कभी दाल कम, कभी चावल, कभी सब्जी कम। ढंग से खाना भी न खा पाओ। आप ही खाइए, मुझे नहीं खाना।'' परसी थाली छोड़ निलेश गुस्से में उठ गया।

माँ कसमसाकर रह गई। उसे मालूम था कि वह निलेश को दुबारा बुलाए तब भी वह नहीं आएगा।

निलेश गुस्से में अपने कमरे में जाकर पढ़ने बैठ गया। थोड़ी देर बाद ही शलभ आकर निलेश की मेज़ के पास आकर खड़ा होकर, उसकी किताबें उलट- पलटकर देखने लगा।

''ओह! छह सौ की! बड़ी महँगी हो गई किताबें।''-शलभ के चेहरे पर आश्चर्य था।

''ये तो सेंकेड हैंड ली है भैया। दो- तीन किताबों का तो पूरा कोर्स ही बदल दिया, नई लेनी पड़ी।''- निलेश जानकारी देते हुए बोला।

''अच्छा! देखें।'' -कहता शलभ उसकी नई किताबों के प्राइस टैग देखने लगा।

''बाप रे! तीन-तीन हज़ार की!''- शलभ को अचंभा हुआ।

''हाँ, पापा ने कहा है कि किताबें लेने में कंजूसी न करना।''- निलेश समझदारी दिखाते बोला।

''कभी सोचा तुमने कि महीने की आमदनी केवल बीस हज़ार होने पर, माँ क्यों अपने खाने में कभी दाल, कभी चावल, कभी सब्जी की कंजूसी कर जाती है। खाना छोड़ने से पहले यह बात ज़रूर सोचना।'' -कहता शलभ निलेश की पीठ थपथपाता कमरे के बाहर निकल गया। ■

अनिता ललित

ख़ास आप सबके लिए!

गर्म-गर्म गुजिया एक सुंदर प्लेट में सजी हुई मेज़ पर रखी हुई थीं। वह अपने मोबाइल से भिन्न-भिन्न एँगल से उस गुजिया से सजी प्लेट का फ़ोटो खींच रही थी- मगर उसके मन का फ़ोटो नहीं आ रहा था। वह बहुत जल्दी में लग रही थी और इसलिए खीझ भी रही थी। मेज़ के दूसरे कोने में उसका लैपटॉप रखा हुआ था, जिसमें वह बीच- बीच में झाँककर आती थी और उसकी बेचैनी और भी बढ़ जाती थी। मानो वह किसी रेस में भाग ले रही हो। इतने में उसका बेटा चिंटू, खेलकर आया और इतनी सुंदर गुजिया देखकर उससे रहा न गया और ''अहा! गुजिया! मम्मा! बहुत ज़ोरों की भूख लगी है!'' कहकर प्लेट पर झपट पड़ा।

''चटाक''... की आवाज़ के साथ एक और आवाज़ गूँजी...

''दो मिनट का सब्र नहीं है! कोई मैनर्स नाम की चीज़ भी सीखी है? भुक्खड़ की तरह टूट पड़े बस!''

फिर सन्नाटा छा गया। चिंटू प्लेट तक पहुँच भी न पाया। उसे अपना क़सूर भी न समझ आया। बस अपना गाल सहलाता हुआ, सहमकर ठिठक गया।

वह बड़बड़ाती हुई फिर से गुजिया की प्लेट की फ़ोटो लेने लगी।

इतने में एक संकोचभरी आवाज़ आई, ''बहू! अगर तुम खाली हो गई हो तो गुजिया ले आना, भगवान को भोग लगा दें?''

''आती हूँ!... सबको अपनी ही पड़ी है! हुँह!''

कहती हुई वह लैपटॉप पर बैठकर कुछ करने लगी। थोड़ी ही देर में उस गुजिया की प्लेट की फ़ोटो फ़ेसबुक पर लगी हुई थी , और उसका शीर्षक था- ''ख़ास आप सबके लिए!''

उसपर ढेरों 'लाइक्स' और 'वाह! वाह! गृहिणी हो तो आप जैसी!' - कमेंट्स आने लगे और वह गर्व से फूली नहीं समाई! ■

कृष्णा वर्मा

गैप

चाय की चुस्की लेते हुए पापा ने पूछा, ''नेहा कौन- सा विषय सोचा नवीं कक्षा के लिए, साइंस या कॉमर्स?''

कुछ सोचते हुए नेहा बोली, ''पापा, साइंस तो बिल्कुल नहीं। यह काट- पीट और खून

देखना मेरे बस की बात नहीं। मैं तो कॉमर्स ही लूँगी। कम से कम कल ठाठ से बैंक में ऑफिसर तो बन सकूँगी।''

पास बैठी मम्मी और दादी उसकी बात सुनकर खिलखिला उठीं।

प्यार से मुस्कुराकर नेहा का कंधा थपथपाते हुए पापा बोले, ''ठीक है बेटा, जिस विषय में दिलचस्पी हो, वही लेना चाहिए और क्या- क्या नया होगा नवीं कक्षा से?''

आँखों को ऊपर तानते हुए झट से बोली, ''पापा, नवीं कक्षा में संगीत और एन.सी.सी भी होती है। आप इनमें से कोई एक को चुन सकते हैं। मेरी बहुत-सी सहेलियाँ एन.सी.सी ले रही हैं, मैं भी लेना चाहती हूँ, क्या मैं ले लूँ।''

पापा कुछ कहते उससे पहले ही दादी बोल उठी, ''एन.सी.सी लेके क्या सीखेगी? तनकर चलना और बंदूक चलाना, यही ना। भला लड़कियों को कब यह सब शोभा देता है। संगीत सीख, जीवन में कुछ काम आएगा। औरत की ज़ात तो दबी- ढकी ही अच्छी लगती है। वह अपनी पलकें और कंधे ज़रा झुकाकर चले, तो जीवन भर रिश्ते- नाते और घर-गृहस्थी सुर में रहती है, समझी।''

माँ की अवज्ञा करना नहीं चाहते थे; इसलिए बिना कुछ बोले ही पापा उठकर चले गए। मम्मी की ओर गुज़ारिश- भरी निगाहों से नेहा ने ताका, तो बेबस मम्मी ने भी आँखों से समझा दिया कि सम्भव नहीं।

उदास—सी नेहा अपने कमरे में चली गई।

पढ़- लिखकर नेहा बैंक में नौकरी करने लगी। देखते- देखते घर- गृहस्थी वाली भी हो गई। चालीस की उम्र पार करते- करते काम के बोझ से ऐसी दबी कि उसकी कमर जवाब देने लगी।

असहनीय पीड़ा के चलते डॉक्टर को दिखाया तो डॉक्टर बोला, ''आपकी रीढ़ की हड्डी में कुछ गैप आ गया है और दो- एक हड्डियाँ अपने स्थान से थोड़ी- सी खिसक भी गई हैं। पीड़ा से जल्दी छुटकारा पाने के लिए आप सुबह- शाम व्यायाम करो और ज़रा तनकर चला करो। झुककर चलना रीढ़ के लिए घातक होता है।'' ■

डॉ. जेन्नी शबनम

पहचान

मेरा लेख एक बड़ी पत्रिका में ससम्मान प्रकाशित हुआ। मैंने मुग्ध भाव से पत्रिका के उस लेख के पन्ने पर हाथ फेरा, जैसे कोई माँ अपने नन्हे शिशु को दुलारती है। दो महीने पहले का चित्र मेरी आँखों के सामने घूम गया।

जैसे ही मैंने अपना कम्प्यूटर खोल पासवर्ड टाइप किया, उसने अपना कम्प्यूटर बंद किया और ग़ैर ज़रूरी बातें करनी शुरू कर दीं। मैंने कम्प्यूटर बंद कर दिया और उसकी बातें सुनने लगी कि उसने अपना कम्प्यूटर खोलकर कुछ लिखना शुरू कर दिया और बोलना बंद कर दिया।

आधा घंटा बीत गया। मुझे लगा, बातें ख़त्म हुईं। मैंने फिर कम्प्यूटर खोला और दूसरी पंक्ति लिखना शुरू ही किया कि उसने अपना कम्प्यूटर बंद कर दिया और मुझे इस तरह घूरने लगा, मानो मैं कम्प्यूटर पर अपने ब्वायफ्रेंड से चैट कर रही होऊँ।

मैंने धीरे से कहा- ''मुझे एक पत्रिका के लिए एक लेख भेजना है।''

उसने व्यंग्य- भरी दृष्टि से मेरी तरफ़ ऐसे देखा, मानो मुझ जैसे मंदबुद्धि को लिखना आएगा भला।

उसने पूछा- ''टॉपिक क्या है?।''

मैंने बता दिया, तो उसने कहा- ''ठीक है, मैं लिख देता हूँ, तुम अपने नाम से भेज दो। यूँ ही कुछ भी लिखा नहीं जाता। समझ हो, तो ही लिखना चाहिए।''

मैंने कहा- ''जब आप ही लिखेंगे, तो अपने नाम से भेज दीजिए।'' फिर मैंने कम्प्यूटर बंद कर दिया।

रात्रि में मैंने लेख पूरा करके पत्रिका में भेज दिया था।

पत्रिका अभी भी मेरी टेबल पर रखी है। क्या करूँ! दिखाऊँ उसे!! मन ही मन कहा- कोई फ़ायदा नहीं!

पत्रिका अभी भी मेरी टेबल पर रखी है। जब वह इसे देखेगा तो? ... सोचते ही मेरा आत्म-विश्वास और भी बढ़ गया। ■

ट्विंकल तोमर सिंह

अपराधबोध

''झूठ बोलना पाप है।'' - छवि ने ब्लैकबोर्ड पर लिखा और पूरी कक्षा को एक- एक शब्द पढ़ना सिखाया, बार- बार दोहराया। सभी बच्चे उसके पीछे- पीछे बार- बार दोहराने लगे- ''झूठ बोलना पाप है, झूठ बोलना पाप है....''

कक्षा के शोर में छवि के अंदर से कभी एक अध्यापिका, कभी एक माँ, और कभी एक पत्नी बाहर निकलकर हँसने लगीं..

''झूठ बोलना पाप है? और तू? तू तो सबसे बड़ी पापी है। स्कूल देर से पहुँचने पर झूठ बोलती है...जी सर...बेटे की तबियत खराब हो गई थी....घर में झूठ बोलती है कि ट्रैफिक में फँस गई थी; इसलिए देर हो गई.....फ़िल्म देखने जाती है, तो बेटे से झूठ बोलती है, डॉक्टर के पास जा रही हूँ।''

छवि को ग्लानिबोध होने लगा। क्यों किसी को भी संतुष्ट नहीं रख पाती? क्यों उसे स्कूल में रहते हुए घर पर मन रखा रहने का और घर में रहते हुए स्कूल में मन रखा रहने का अपराधभाव हरदम सताता रहता है? पिछले

महीने प्रिंसिपल से उसने एक एक्स्ट्रा छुट्टी माँगी थी। प्रिंसिपल ने साफ मना कर दिया था, ''आपकी सारी सी एल खत्म हो चुकी हैं। आपके बीमार पति को देखने वाले और लोग घर पर नहीं हैं क्या?'' घर पर सास अपने बीमार बेटे की तीमारदारी करने के कारण मुँह फुलाकर बैठीं थीं, ''नौकरी ज्यादा प्रिय है, छुट्टी नहीं ले सकती महारानी।''

यह तो एक उदाहरण है। प्रतिदिन उसे इसी खींचतान में सामंजस्य बिठाना पड़ता है। इस तनाव से बचने के लिए यदि वो कभी- कभार अपनी महिला सहकर्मियों के साथ घूमने चली जाए, तो आफत ही आ जाती है। सबको खुश रखने की कोशिश करते- करते उसकी स्वयं की खुशी कहाँ गुम हो गई, किसी को ख़्याल भी है? छवि की आँखें नम हो आईं।

बच्चे इतनी देर में शोर करने लगे, तो छवि अपनी तंद्रा से बाहर आई। उसने गहरी साँस छोड़ी। कमरे में घुटन बढ़ जाए, तो साँस लेने के लिए खिड़की खोल लेना चाहिए। ब्लैकबोर्ड पर उसने दूसरी पंक्ति लिखी और कहा-

''बच्चो!, अब पढ़ो....किसी की जान बचाने के लिए बोला गया झूठ पाप नहीं है...''■

रंजना जायसवाल

सौदा

''अजी सुनती हो, अपनी बेटी के लिए बड़े भैया ने बहुत अच्छा रिश्ता बताया है। इकलौता लड़का है।''

''अरे वाह! बड़ी अच्छी ख़बर सुनाई। न जेठ-जेठानी की किच-किच, न ननद की चोंचलेबाजी बर्दाश्त करनी पड़ेगी।''

''बड़े भैया ने कोई फ़ोन नंबर वगैरह दिया है?''

''हाँ, बड़े भैया ने उनसे बात की थी। अपनी बिटिया की फोटो भी उन्हें भेजी है। आगे की बात करके देखते हैं।''

शर्मा जी ने मोबाइल से नंबर मिलाना शुरू किया- ''नमस्कार! मैं अनिल शुक्ला का छोटा भाई हूँ।''

''नमस्कार शुक्ला जी कैसे हैं आप... ?''

''जी मैं ठीक हूँ, वह आपको भैया ने बेटी की फोटो भेजी होगी।''

''जी-जी... ''

''कैसी लगी आपको... ?''

''वो सब तो ठीक है शुक्ला जी, पहले हम लोग तो एक-दूसरे को जान लें।''

''शर्मा जी जानना क्या है? मैं प्राइवेट कंपनी में काम करता हूँ। भगवान की दया से किसी चीज़ की कोई कमी नहीं है। मेघा हमारी इकलौती बेटी है, सब कुछ उसी का है।''

''इकलौती?''-शर्मा जी की आवाज़ अचानक से तल्ख़ हो गई।

''जी कोई बात है।''

''माफ कीजिएगा शुक्ला जी मुझे घुमा-फिराकर बात करने की आदत नहीं है। आपकी बेटी से ये रिश्ता नहीं हो सकता।''

''क्या हुआ भाई साहब?''

''बेटे को इस शादी से रिश्ते के नाम पर क्या मिलेगा। कल जब आप दोनों मियाँ- बीवी इस दुनिया में नहीं होंगे, बहू का तो मायका ही ख़त्म हो जाएगा।''

''शर्मा जीह्यह्यह्य...वो!''-पीछे से किसी महिला की आवाज़ आई।

''मेरा लड़का तो सास- ससुर की सेवा करते- करते मर जाएगा। हमें ऐसा रिश्ता नहीं करना है।''

शुक्ला जी शुक्लाइन की तरफ़ ठगे- से देख रहे थे।■

डॉ. नितिन उपाध्ये

जल-समाधि

सब तरफ केवल जल ही जल था, जो धीरे-धीरे उसके पाँव से होता हुआ उसकी कमर तक पहुँच रहा था। धरती जल समाधि लेने की तैयारी में थी और अपने ही सलीब को हाथों में थामे

डूबने को आतुर थी, मानो उससे भी अब यह सब सहन नहीं हो रहा था। आसमान भी अजीब-से काले पक्षियों से भर गया था। उसने अपनी पत्नी शतरूपा का हाथ कसकर पकड़ा और आस- पास देखा। कन्क्रीट के जंगल में दूर-दूर तक एक भी पेड़ नहीं था, जिसके तने को काटकर एक अदद नाव बन पाती। नई दुनिया बसाने के लिए नाव में साथ किसे रखे, देखने के लिए नजर घुमाई तो एक भी पशु- पक्षी- वनस्पति, फूल, पत्ते कुछ भी नहीं दिख रहा था। शतरूपा की कलाई पर उसकी पकड़ कसती चली गई।

अचानक से पत्नी ने कहा- ''मेरा हाथ तो छोड़ो, पार्टी खत्म हो गई है, रात में चैन से सोने तो दो।''

आँखें खोलकर देखा तो घर भर में प्लास्टिक की पन्नियाँ, गुब्बारे, चमकीले कागदों में लिपटे उपहार, पानी की और ठन्डे की छोटी- बड़ी बोतलें बिखरी पड़ी थीं। घर में ऊपर से नीचे तक सभी बल्ब, पंखे, एसी अपनी पूरी क्षमता से चले जा रहे थे। फ्रीज़ बड़े- से केक, ढेर सारे खाने को आसरा देने के बावजूद अपना दरवाजा खोले खड़ा हुआ था। सामने रखे हुए बड़े- बड़े स्पीकर्स जैसे उन्हीं काले- काले पक्षियों की तरह कोलाहल कर रहे थे।

टिश्यू पेपर से भरे बेसिन से बहता पानी उसके घर भर में धीरे-धीरे फैलने लगा था।■

निर्देश निधि

बेचारा

उनकी बड़ी बहू एक कामकाजी महिला थी। दिन भर ऑफिस, आए दिन कामवाली की छुट्टी, सामंती पति के रुमाल देने से खाना परसने तक के ढेरों काम। उस पर तीन बरस के छोटे- से बच्चे की देखभाल। कोई हँसी खेल था क्या? उनकी छोटी बहू पढी- लिखी तो बड़ी बहू से भी अधिक थी पर उसने अपने घर को प्राथमिकता दी थी ओर अपनी लगी-लगाई सरकारी नौकरी को वह पल में तिलांजलि दे आई थी, सिर्फ़ यही नहीं किया, उसने सुगृहिणी भी बनकर दिखाया।

बाहर का काम सिर्फ पति करता, वह घर और बच्चों की देखभाल करती, समय पर खाना बनता, खाया जाता, बच्चे स्वस्थ व संतुष्ट रहते।

एक दिन बड़ी बहू छोटी के घर आई। बड़ी का बच्चा कुछ अनमना, उदास- सा लग रहा था, जबकि छोटी के बच्चे उसका हाथ पकड़-पकड़कर अपने साथ खेलने का प्यार भरा आग्रह कर रहे थे। छोटी को बच्चे पर लाड आया और बोल उठी, ''कैसा उदास लग रहा है बेचारा बच्चा...'' अभी इतना ही कहा था कि बड़ी वाली उस पर बरस पड़ी, बेचारा कैसे है ये हम भी तो जानें, हम क्या इसका ध्यान नहीं रखते? हम क्याा इसके सौतेले हैं जो इसे प्यार नहीं करते?

तुम्हारी मजाल कैसे हुई इसे बेचारा कहने की?''

''जीजी, मैं तो....'' -छोटी धीरे से बोली, पर बड़ी ने बीच में ही टोक दिया- ''वैसे तुम इसके लिए कर क्या रही हो, जो तुम्हें इसे बेचारा पुकारने का हक मिल गया, इसके पास तुम्हारे बच्चों से संख्या और कीमत दोनों में दुगुने खिलौने हैं, दस गुने महँगे कपड़े हैं। हमने इसे सबसे महँगे क्रच में डाल रखा है, आया रखी है। छह हजार रुपये महीने की। एक पल भी वो अकेला नहीं छोड़ती इसे, अच्छे से अच्छा खाना बनाकर खिलाती है अपने हाथों से। क्रच की छुट्टी होने पर जब यह घर लौटता है, तो वह इसकी देखभाल सावधानी से करती है, और यह सब कन्फर्म करने के लिए हमने घर के हर कोने में सी सी टी वी कैमरे लगा रखे हैं, समझी तुम। आई बड़ी बेचारा बोलकर सहानुभूति दिखाने वाली।''

अब तो छोटी को यकीन हो गया था कि वह नन्हास बच्चा वाकई बहुत बेचारा था। ■

माधव नागदा

पुराना दरवाज़ा

यह दरवाज़ा कई बरसों से उनकी नज़र में था। दादाजी की हवेली से खोला गया था। नक्काशीदार चौखट, मज़बूत किंवाड़, किंवाड़ों पर दिलकश मांडणे। देखते तो उनका हिया जुड़ा जाता। सोचते, जब भी नवनिर्माण होगा, ख़ास कमरे में यह ख़ास दरवाज़ा ज़रूर लगवाएँगे। दादाजी की धरोहर के रूप में।

वे तो कुछ विशेष नहीं कर पाए। हाँ, बेटा कमाऊ निकला। पैसा सहेजना जानता है। अब मन माफ़िक बँगला बनवा रहा है। वे भी बहुत खुश हैं। ख़ास तौर से यह सोचकर कि अब दादाजी वाले दरवाजे के दिन फिरने को हैं। बरसों बाद उनके मन की मुराद पूरी होने वाली है।

मकान इस स्तर तक पहुँच गया था कि चौखटें फिट की जा सकें। उन्होंने एक कमरे में वह बहुप्रतीक्षित दरवाज़ा लगवा ही दिया।

उस दिन बेटा कहीं बाहर था। आकर देखा तो माथा भन्ना गया। उसने कारीगर की तरफ़ रोषपूर्ण दृष्टि फेंकी और ज़रा तेज स्वर में पूछा कि यह बाबा आदम के ज़माने का दरवाज़ा यहाँ क्यों लगाया है?

''बाबूजी ने कहा था।''

बेटे ने किया 'हुँह' और कारीगर को डपटा, ''हटाओ इस भंगार को अभी के अभी। मैंने नई फैशन के दरवाजे बनवा लिए हैं, समझे।''

कारीगर ने अपने 'सेठजी' की आज्ञा का पालन करते हुए दरवाज़ा खोलकर दूर एकांत कोने में ले जाकर खड़ा कर दिया।

बाबूजी देखते रह गए। उन्हें लगा कि वहाँ पुराना दरवाज़ा नहीं बल्कि वे स्वयं खड़े हैं। अडोल। ■

मीनू खरे

प्राइमरी स्कूल

अपने मोबाइल पर एकाएक बेसिक शिक्षा अधिकारी का नम्बर देख प्राइमरी विद्यालय की प्रिंसिपल हड़बड़ा गईं। खड़े होकर फ़ोन रिसीव किया, ''प्रणाम सर!''

बी.एस.ए. महोदय बोले, ''कैसा चल रहा है विद्यालय?''

''सर हमारा रिजल्ट सौ प्रतिशत रहा। अटेंडेंस भी टॉप रही। सर दाखिले भी पिछले साल से दोगुने हुए।''

"हम्म्म!"

"सर हम पब्लिक स्कूल से सिर्फ़ अंग्रेज़ी में पिछड़ते थे; पर हमने बच्चों के अंग्रेजी बोलने पर भी मेहनत की, जिससे हमारे बच्चे भी अब अंग्रेज़ी बोल रहे हैं। लोग अपने बच्चों को हमारे स्कूल में ख़ूब डाल रहे हैं।"

"हम्म्म"

"सर हम खेल और भाषण-प्रतियोगिता में ज़िला स्तर पर टॉप हुए हैं। कुछ बच्चे तो पब्लिक स्कूल छोड़कर हमारे यहाँ आए हैं सर। यही मेरा सपना था कि सरकारी विद्यालय पब्लिक स्कूल से बेहतर हों सर!"

"तो अब आप सपने से बाहर आ जाएँ।"

"समझी नहीं सर!"

"आपकी शिकायत मिली है कि आप क्षेत्र में वैमनस्य फैला रही हैं। पब्लिक स्कूल छोड़ने के लिए अभिभावकों पर दबाव बना रही हैं। कुछ लोगों पर हमले भी करवाए हैं आपने।"

"नहीं तो सर! सब बिलकुल झूठ है! हम कम पैसों में उत्कृष्ट शिक्षा दे रहे हैं... पब्लिक स्कूल में फीस ऊँची है और पढ़ाई हमसे खराब इसलिए लोग बच्चों को यहाँ भेज रहे हैं।"

"पब्लिक स्कूल किसका है, पता है? नहीं न? इतने बड़े लोगों का स्कूल ठप्प करके नौकरी कर पाएँगी आप?"

"फिर हम क्या करें?"

"आप सिर्फ़ मिड-डे मील पर ध्यान दीजिए... बाकी आराम कीजिए!"

इसके बाद विद्यालय सिर्फ़ मिड-डे मील पर केन्द्रित हुआ।

प्रिंसिपल ने खाली समय में परचून की दुकान खोल ली। ■

योगराज प्रभाकर

तापमान

"पैंतीस साल की नौकरी के बाद भी न कोई क़द्र है, न कोई इज्ज़त। ये भी कोई ज़िंदगी है? इससे अच्छा तो मौत ही आ जाए, सारा टंटा ही ख़त्म हो।" अपना स्कूटर दीवार से साथ लगाकर बाबूजी बड़बड़ाते हुए घर में दाख़िल हुए।

दरअसल आज का दिन ही मनहूस था बाबूजी के लिए। सुबह घर से काम पर जाने के लिए निकले, तो रास्ते में स्कूटर ख़राब हो गया, सुबह- सुबह कोई मैकेनिक भी नहीं मिला, तो लगभग तीन मील तक बमुश्किल स्कूटर को घसीटते हुए कारख़ाने पहुँचे। जाते ही उस नए अफ़सर ने बिना कुछ सुने बाबूजी को देर से आने पर न केवल डाँटा; बल्कि नौकरी से निकाल देने की धमकी भी दी थी। दोपहर को पता चला कि तीर्थयात्रा पर जाने के लिए उनकी छुट्टी मंज़ूर नहीं हुई। यही नहीं अपने छोटे बेटे के दाखिले हेतु जो ॠण की अर्ज़ी दी थी, वह भी अस्वीकार कर दी गई थी। उनका खाना भी आज डिब्बे से बाहर नहीं निकला, और भोजनावकाश के समय वे बीड़ी पर बीड़ी फूँकते रहे।

"बाबूजी, पानी।" बाबूजी को देखते ही उनकी पुत्रवधू पानी का गिलास उनके सामने रखते हुई बोली।

"नहीं बहू, मुझे नहीं चाहिए, ले जाओ उठाकर।" बाबूजी के माथे की त्योरियाँ और गहरी हो रही थीं।

"इतने परेशान क्यों हो, तबीयत तो ठीक है न? क्या हुआ है तुम्हें?" बाबूजी की पत्नी भी कमरे में आ पहुँची।

"कुछ नहीं हुआ मुझे, बस तुम लोग जाओ यहाँ से।" बाबूजी ने उन्हें उँगली के इशारे से बाहर का रास्ते दिखाते हुए कहा।

"बाऊ जी, वो आपके लोन का क्या हुआ?"- स्थिति से अनभिज्ञ छोटे बेटे ने कमरे में प्रवेश करते ही पूछा।

उत्तर में बाबूजी ने उसे बुरी तरह घूरकर देखा, उनका यह रूप देखकर, सबने वहाँ से जाना ही उचित समझा।

बीड़ी सुलगाकर वे फिर बड़बड़ाने लगे- "ये ज़िंदगी है कि नरक?" कमरे की दीवारों का ज़र्द पीला रंग धीरे- धीरे उनके चेहरे पर उतर रहा था। और वे एकटक दीवारों को घूरे जा रहे थे, उदासी का सन्नाटा पूरे कमरे में फैल चुका था, तभी नन्ही- नन्ही पायलों की छनछन से कमरा गूँजने लगा।

"दादू, दादू जी!!"

इन शब्दों से उनकी तन्द्रा भंग हुई। तीन साल की पोती अचानक उनकी टाँगों से आ लिपटी और बाबूजी के माथे से त्योरियाँ कम होने लगीं।

"अले... ले... ले... ले! मेली गुगली-मुगली! मेली म्याऊँ बिल्ली! कहाँ चली गई थी तू? दादू जी कब छे तुझे ढूँढ लए थे।" -नन्ही पोती को उठाते हुए वे पंछी की तरह चहक उठे थे। पोती ने भी अपना सिर उनके कंधे पर रख दिया। अब उनके चेहरे के पीलेपन पर पोती की फ़्रॉक का गुलाबी रंग चढ़ना शुरू हो चुका था। स्नेह से उसका माथा चूमते हुए उन्होंने पुत्रवधू को आवाज़ दी, "एक कप गर्मा-गर्म चाय तो पिला दे बहू...ऽ...।" ■

रामकरन

चुभन

हम लोग गाँव छोड़कर सड़क किनारे वाले घर पर रहने लगे थे। मेरे पड़ोस में एक घर बना था पर उसमें कोई रहता नहीं था। कुछ दिनों के बाद एक नया परिवार उसमें रहने आया। हम टकटकी लगाकर उन्हें देख रहे थे। माँ- बाप के साथ दो सुंदर- सुंदर चुलबुली लड़कियाँ थीं, जो बोलती थीं, तो लगता था कि चिड़ियाँ चटर-चटर कर रहीं हों। उनका सामान उतर रहा था। दो मजदूर काम कर रहे थे और हम ताक में थे कि वे हमसे भी कुछ मदद माँगें, पर ऐसा कुछ

नहीं हुआ। सामान के साथ ही पड़ोसी परिवार सहित घर में गुम हो गए।

हमारी नजर उनके दरवाजे पर ही लगी रहती। एक दिन पड़ोसी पिता जी के पास आए। ज्यादा बात नहीं हुई। उन्होंने पूछा- ''कोई अच्छा बढ़ई हो तो बताएँ।''- पिताजी ने बता दिया। दो दिन बाद एक बढ़ई आया और खटर- पटर शुरू हो गया। मकान के आगे- पीछे जालीदार दरवाजा लग गया। ये जालीदार दरवाजे तभी खुलते, जब उन्हें बाहर आना होता या अंदर जाना होता। इसके अलावा वे चौबीसों घण्टे बंद रहते।

कभी- कभी घर की मालकिन निकलती, तो माँ से कुछ बात करती। फिर वे अंदर हो जाते। शाम को चारों प्राणी ट्रैक- सूट में निकलते और स्टेडियम चले जाते। फिर अँधेरा होने पर आते। माँ आँगन में अक्सर लौकी- कददू रोपती थी। जब फल आते, तो वह पड़ोसी को देने चली जाती। हम इंतजार करते। माँ काफी देर बाद लौटती और बताती कि चाय- पानी करते उसे देर हो गई।

सुबह- सुबह दोनों बेटियाँ स्कूल चली जातीं और पति- पत्नी ड्यूटी। पड़ोसी का लंबा- चौड़ा सहन दिन भर सूना रहता। धीरे- धीरे उनकी उदासीनता हमें खलने लगी। हम उन्हें देखते, तो न जाने कैसा कसैला भाव उमड़ने लगता। मन ही मन गाली देते और उनकी तरफ थूकते। हमारा माथा तब भिन्ना जाता, जब हमें लगता कि उन्होंने हमारी तरफ गौर ही नहीं किया। मन करता कि क्या ऐसा करें कि पड़ोसी जलभुनकर गालियाँ बकना शुरू कर दें। पर वे हमेशा शांत दिखाई पड़ते। इससे हमारी जलन बढ़ जाती। हम पान खाते तो पड़ोसी की तरफ थूक देते। चिप्स- गुटके और अन्य सामानों की पन्नियाँ उनके द्वार पर ही फेंक देते। हमें अंदाजा था कि पड़ोसी जरूर किसी दिन भड़केंगे। माँ उनको अब तक बहुत सारा लौकी, तरोई, कददू और गन्ना दे चुकी थी। अब उन्हें भी उनका व्यवहार खटकने लगा था। जबकि जब वे ये सामान उनके घर में देने जाती तो चाय- नाश्ता जरूर करके आती। पर वे अक्सर कहतीं कि पड़ोसन में बहू- बेटी वाला गुण नहीं है। माँ- बाप ने कुछ सिखाया- पढ़ाया नहीं। अंग्रेजन है। उन्हें सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि हमारी जाति जानते हुए भी उसने उनके पैर नहीं छुए थे। इसलिए उनका मन भी खट्टा हो गया था। इधर हमने पड़ोसी के सामने खूब गन्दगी फैला दी थी और अनुमान लगा रहे थे कि धैर्य का घड़ा फूटने ही वाला है कि अगले इतवार को हमने देखा- एक मजदूर ने साफ- सफाई करके पड़ोसी का अगवाड़ा- पिछवाड़ा चकाचक कर दिया। हमें लगा कि किसी ने हमपर घड़ा भर पानी डाल दिया और हम ठिठुरकर सिकुड़ गए हों। हम भी जिद पर आ गए। अब हम दोस्तों के साथ वहीं बैठते और गम्मज करते। जितने पुकार- पुड़िया खाते, सब पड़ोसी के सामने फेंक देते और धृष्टता से सोचते कि कभी बात चली तो कह देंगे कि हवा से उड़कर गया है। हवा को हम रोक नहीं सकते।

हमें पूरा भरोसा था कि दो लड़कियों के बाप को हमारे जैसे उजड्ड लोगों का बैठना जरूर चुभेगा। लेकिन ऐसा न हुआ। एक दिन पड़ोसी ने मजदूर लाकर अपने द्वार के दोनों किनारों पर क्यारी बनाकर झाड़ रोप दिए। अब हम इस पार और वो उस पार हो थे। झाड़ बड़ा और घना हो गया और हमें चुभने लगा। ■

शशि पाधा

सिंहासन

वंदना को अचानक सुबह-सुबह घर में प्रवेश करते देख, उसकी माँ शारदा थोड़ी हैरान हो गई। जब से ब्याही थी हमेशा फोन करके ही आती थी। और आज...

''आओ बेटी आओ। अच्छा किया, तुम आ गई। मुझे भी तुम्हारी बहुत याद आ रही थी। फोन नहीं आया था न तुम्हारा, बहुत दिनों से।'' शारदा ने कहा। माँ थी वह, इसलिए कुछ-कुछ समझ रही थी।

वंदना ने अपना पर्स डाइनिंग टेबल पर पटका और कुर्सी की पीठ पर सर रखकर आँखें बंद कर लीं। आज वह बात करने के मूड में नहीं थी।

''चाय बनाऊँ या सीधे नाश्ता ही करोगी? मैंने भी अभी तक नहीं किया है।'' शारदा उसे थोड़ा समय दे रही थी।

वह अच्छे से जानती थी अपनी बेटी को, लेकिन आज वही बेटी पहेली बनी बैठी थी।

''अच्छा, और बताओ सब लोग कैसे हैं?'' -वह उसे कुरेदना नहीं चाहती थी पर कुछ तो कहना था।

''हाँ सब ठीक हैं, एक मेरे सिवाय। आप क्या जानो उस घर में मेरा क्या स्थान है। और सौरभ को तो जिम्मेवारियाँ कभी छोड़ती नहीं। मैं तो बस ---'' -वंदना का स्वर थोड़ा ऊँचा हो रहा था।

चाय के दो कप लेकर शारदा उसकी सामने वाली कुर्सी पर बैठते हुए बोली, ''तो तुम सौरभ की जिम्मेवारियों से परेशान हो या ससुराल में अपना स्थान ढूँढ रही हो?''

''माँ! जानती हो न आप कि पापा रिटायर हो गए हैं। गौरव और मेधा अभी तक पढ़ रहे हैं। ऊपर से सासू माँ की दवाइयाँ। बस सौरभ सभी की ज़रूरतें पूरी करने में लगा रहता है। मेरी तो उसे परवाह ही नहीं।'' शिकायत-भरे स्वर में उसने मन की बात कह दी।

''बेटी थोड़ा धीरज रखो। एक-दो साल तक सब ठीक हो जाएगा। सारी उम्र पड़ी है अपनी ज़रूरतें पूरी करने की।''

अभी शारदा अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि वंदना बिफ़र पड़ी, ''आप क्या जानो अभाव में जीना कितना कठिन होता है। कितनी बार अपना मन मारना पड़ता है। आपको तो इस परिवार ने सदा सिंहासन पर बिठाकर रखा है। हर कोई आपका आदर करता है। और वहाँ... वहाँ मुझे अपने को भी ढूँढना पड़ता है। बस अब और नहीं।''

कुछ देर के लिए एक अजीब-सी खामोशी पसर गई कमरे में।

आखिर शारदा ने ही चुप्पी तोड़ी।

"वंदना! सिंहासन नहीं, स्थान कहो। जानती हो यह स्थान मुझे कैसे मिला? मैंने इस घर की ज़रूरतों को प्राथमिकता दी। और सब का प्यार -आदर तो मुझे बोनस में मिला। मैं ब्याह के बाद ही समझ गई थी कि तुम्हारे पापा की खुशी कहाँ पर बसी है। मैंने भी उसी खुशी को अपना बना लिया। मैंने जो सबको दिया, वह दुगना होकर मेरी झोली में पड़ गया।"

" माँ! आप तो बस ..." -वंदना जैसे कुछ सुनना ही नहीं चाहती थी।

वंदना के काँधे पर हाथ धरते हुए शारदा ने बड़े प्यार से कहा- " बेटी! कुछ पाने के लिए कुछ देना भी पड़ता है। और अगर खुशी-खुशी दे दो तो प्यार-आदर के साथ-साथ सिंहासन भी मिल जाता है। अपने लिए स्थान ढूँढना नहीं, स्थान बनाना पड़ता है। बस थोड़े से संयम और धैर्य की आवश्यकता होती है।"

वंदना चुपचाप सुनती रही। माँ की ओर उसने ऐसे देखा, जैसे अपनी ही माँ के अतीत में झाँक रही हो।

शारदा चाय का कप उठाकर किचन की ओर चल दी। वह जानती थी कि आज के बच्चे ज़्यादा भाषण पसंद नहीं करते।

किचन से उसने सुना- वंदना फोन पर सौरभ से कह रही थी, " सुनो, मैं माँ से मिलने आई हूँ। ऑफिस से लौटते समय मुझे पिक अप कर लेना। और हाँ! थोड़ा जल्दी आ सकते हो? मुझे रात को सबकी पसंद का खाना बनाना है।"

किचन में शारदा मुस्कुरा रही थी। ■

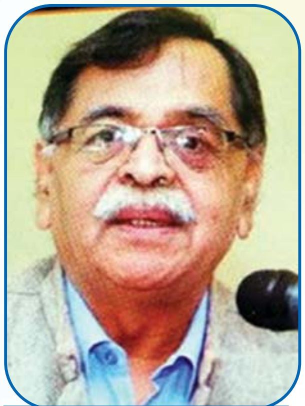

डॉ. श्याम सुन्दर 'दीप्ति'

रोटी का सफ़र

"ये इतनी सारी रोटियाँ बच गईं, अन्न की बरबादी नहीं करते।" माँ ने रसोई में घुसते, रोटियों के लगे ढेर को देखते हुए कहा।

"माँ जी, पहले समोसे-पकौड़े खा लिये , फिर रोटियाँ किसे खानी थीं?"- बहू ने जवाब दिया।

"होटल से रोटियाँ कम मँगवानी थी ना", माँ ने रोटियों को एक लिफाफे में डालते कहा।

"बस माँ जी, जल्दी- जल्दी हँसी- मज़ाक में बैठे हिसाब नहीं लगाया और इन्होंने कर दिया ऑर्डर।"- बहू ने स्पष्टीकरण देने की कोशिश की।

"चल छोड़, अब। इस तरह कर, बाहर रख दे कूड़े के साथ। कूड़ा उठाने वाला लड़का आएगा ना, उसे दे देना, किसी गरीब के मुँह में तो जाएँगी", माँ ने लिफाफा बहू के हाथ पकड़ाते कहा।

कूड़े वाले ने बेल बजाई, तो माँ ही भागी हुई गई। दरवाज़ा खोलकर जब वह कूड़ा उठाने लगा, तो माँ कहने लगी, "भइया ये रोटियाँ भी ले जाना।"

कूड़े को रेहड़ी में डाल, डस्टबिन वापस रखा और रोटियों वाला लिफाफा उठाकर रेहड़ी में, कूड़े के साथ रख लिया।

माँ अभी वहीं खड़ी ही थी। एकदम बोली, "तूने इन्हें भी गंद के साथ रख लिया। रेहड़ी के हैंडल से टाँगनी थीं।"

"बीबी जी," -वह कहते- कहते हुए रुका और फिर कहा, "बात ये है कि बच्चे खाते नहीं।"

"क्यों? क्या हुआ है, ताजी जैसी ही हैं, रात को ज़्यादा मँगवा ली बच्चों ने!", माँ ने समझाने की कोशिश की।

उसने मन में कहा, "अगर ताजी जैसी हैं, तो आप क्योंर नहीं खा लेते", पर बोला नहीं। उसे तकरीबन हर रोज़ ही ऐसी बातों का सामना करना पड़ता है।

उसने सहज भाव से कहा, "वो तो ठीक है बीजी, बच्चे कहते हैं माँ के हाथ से बनी रोटी खाएँगे!" ■

सतीश राठी

खुली किताब

वह सदैव अपनी पत्नी से कहता रहता, "जानेमन! मेरी ज़िन्दगी तो एक खुली किताब की तरह है, जो चाहे सो पढ़ ले।" इसी खुली किताब के बहाने कभी वह उसे अपने कॉलेज में किए गए फ्लर्ट के किस्से सुनाता, तो कभी उस ज़माने की किसी प्रेमिका का चित्र दिखाकर कहता- "ये शीला ...उस ज़माने में जान छिड़कती थी हम पर। हालाँकि अब तो दो बच्चों की अम्मा बन गई होगी।"

पत्नी सदैव उसकी बातों पर मौन मुस्कुराती रहती। इस मौन मुस्कुराहट को निरखते हुए एक दिन वह पत्नी से प्रश्न कर ही बैठा- "यार सुमि! हम तो हमेशा अपनी ज़िन्दगी की किताब खोलकर तुम्हारे सामने रख देते हैं और तुम हो कि बस मौन मुस्कुराती रहती हो। कभी अपनी ज़िन्दगी की किताब खोलकर हमें भी तो उसके किस्से सुनाओ।"

मौन मुस्कुराती हुई पत्नी एकाएक गम्भीर हो गई, फिर उससे बोली- "मैं तो तुम्हारे जीवन की किताब पढ़- सुनकर सदैव मुस्कुराती रही हूँ; लेकिन एक बात बताओ, मेरी ज़िन्दगी की किताब में भी यदि ऐसे ही कुछ पन्ने निकल गए, तो क्या तुम भी ऐसे ही मुस्कुरा सकोगे?"

वह सिर झुकाकर निरुत्तर और मौन रह गया। ■

डॉ.सुरंगमा यादव के हाइकु का काव्य-वैभव

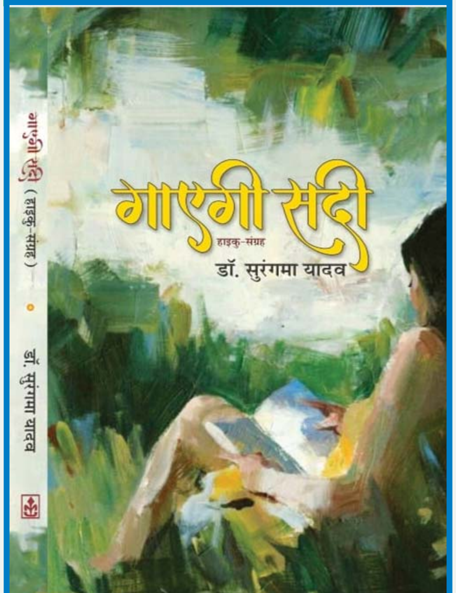

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

रघुवंशम् के प्रथम सर्ग का पहला श्लोक है–

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ 1.1

पहले दो पदों 'वागर्थाविव संपृक्तौ' में वाणी / शब्द और अर्थ को परस्पर 'एकीकृत / सम्बद्ध / घनिष्ठ' बताया गया है। काव्य केवल शब्द नहीं, अर्थ भी उसमें समाया हुआ है। शब्द अपने आप में तब तक सार्थक नहीं होता, जब तक उसमें अर्थ की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती। तुलसी भी मानस में कह चुके हैं–

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।

–शब्द और अर्थ-जल और उसकी लहर के समान एकाकार हैं, भिन्न नहीं हैं। वाणी और अर्थ की यह अभिन्नता ही भावों और विचारों के सम्प्रेषण का वाहक है। अगर हाइकु के सम्बन्ध में कहूँ, तो यह केवल 5+7+5=17 का वर्ण-विधान नहीं, उससे अधिक यह अनुभूतिपरक सम्प्रेषण है। इतनी संयमित शब्दावली में अर्थ का सन्धान कठिन है। दरिद्र भाषा, सपाट और उथला चिन्तन, उलझी अनुभूतियाँ एवं मृतप्राय कल्पनाएँ किसी भी काव्य-विधा के लिए संजीवनी नहीं बन सकतीं। सीमित शब्दावली में अनुभूतियों के प्रवाह को बाँधना, उसे सही अभिव्यक्ति देना दुष्कर है। https// hindihaiku. wordpress. com/ हिन्दी हाइकु 04 जुलाई 2010 से निरन्तर एक सुदृढ़ मंच के रूप में विश्वभर में हिन्दी हाइकु-साहित्य का प्रसार कर रहा है। डॉ. सुरंगमा यादव जुलाई 27, 2017 से इस अन्तर्जाल से जुड़ी हैं। यह हाइकु-जगत् के लिए गर्व की बात है कि डॉ. सुरंगमा यादव को उनके हाइकु-संग्रह 'भावप्रकोष्ठ' पर उत्तर प्रदेश सरकार ने 2021-22 का एक लाख रुपये का रामधारी सिंह 'दिनकर' पुरस्कार भी दिया है।

इनका नया हाइकु-संग्रह 'गाएगी सदी' सार्थक सर्जन की आश्वस्ति जैसा है। यह संग्रह इन 5 उपशीर्षकों में विभाजित है–ढाई आखर, वक्त की धूप, हरित कथा, जग की लीला, सुधियों की सुरभि।

जीवन इन्द्रधनुषी रंगों से सज्जित है, जिसमें प्रतिपल कुछ न कुछ घटता रहता है। कभी वह प्रियकर होता है, तो कभी अप्रिय भी। सुख के पल बहुत कम होते हैं, तो ऐसे व्यक्ति भी कम ही होते हैं, जो हमारी मनोभूमि से परिचित हों। दु;ख देने वाले अधिक होते हैं, अपने भी और पराए भी। जो निर्दय हों, व्यथित करने वाले हों, उनसे आशा ही क्या की जा सकती है–

चलाके तीर / फिर पूछा तुमने- / कहाँ है पीर।

ऐसी स्थिति में क्या किया जाए, सिर्फ़ धैर्य ही वह साथी है, जो सम्बल देता है–

जब भी रोया / धीरज के धागों में / मन पिरोया।

सभी जानते हैं कि जीवन क्षण-भंगुर है। यह तो रेत पर लिखे नाम की तरह है, जिसे आने वाली लहर कब बहा ले जाएगी, कुछ पता नहीं। इसे जीभर जी लेना चाहिए। यही इसकी सार्थकता है। हमारी कामनाएँ छलना की तरह हैं, जो हाथ में न हो या हाथ ही न आए, उसे ही पाने की ज़िद करती हैं–

रुक लहर / रेत पर लिखा नाम / देखूँ जीभर।
झील में चाँद/ पकड़ने की ज़िद/हठीला मन।

प्रिय को पाने की, पाकर उसे स्पर्श करने की अनुभूति हमें अपूर्व शान्ति से अभिभूत कर देती है, रोम-रोम पुलकित हो जाता है। प्रेम, जीवन की प्राणवायु है, जो जीवन के लिए ज़रूरी है। इसके बिना पूरा जीवन, तपती मरुभूमि की तरह है। मरुस्थल जैसे जीवन में मन इसी प्रेम-जल के लिए व्याकुल रहता है। कवयित्री उसी मरुथल में जीवन की नमी तलाशती रही है, जिसको पाने से ही जीवन में स्थिरता आ सकती है–

तुम्हें जो पाया/झील-सा ठहराव/मन में आया।
स्पर्श तुम्हारा/रोम-रोम में फूटी/नेह की धारा।
प्रेम का जल/जीवन-मरुथल/ढूँढता मन।
ढूँढती रही/मन की मरुभूमि/नेह की नमी।

जैसा हम बनाना चाहते हैं, जीवन वैसा नहीं बन पाता। पत्थरों को सींचने से कभी बगीचे हरे-भरे नहीं होते–

कितना सींचे/पत्थरों पर कब/उगे बगीचे।

प्रेम का इन्द्रजाल भी अद्भुत है। प्रेम में डूबकर नयनों में नए-नए स्वप्न अंकुरित हो जाते हैं। जिस प्रिय पर भरोसा नहीं होता, उसका हर वादा क्षणभंगुर होता है–

जादू तुम्हारा/नयन स्वप्नशाला/बने हमारे।
वादे तुम्हारे/कमल पात पर/बूँद बसेरे।

मानव-मन और पूरी प्रकृति-जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, पंचतत्त्व आदि मिलकर पूरा जड़-चेतन जगत् है। हाइकु के व्यापक विस्तार में ये सभी समाहित हो जाते हैं। इनका सौन्दर्य रसज्ञ को अभिभूत करता है। सुरंगमा यादव ने 'क्लोज़अप' शब्द के प्रयोग से 'फोटोजे़निक फ़ेस' वाले चाँद का मानवीकरण नए ढंग से किया है–

पूनो को देख/ दे रहा क्लोजअप / चाँद सलोना।

'प्रिय' और 'मनके-मन के' शब्द के प्रयोग में यमक की छटा देखिए–

सुन ओ प्रिय! / सर्दी की धूप-सी / तुम हो प्रिय।
प्रेम-मनके / मीत मेरे मन के/तुमने दिए।

भाव तो सबके हृदय में होते हैं; लेकिन शब्दों के अभाव में अभिव्यक्त नहीं हो पाते। सघन भावों की अभिव्यक्ति के लिए सहज, प्रवाहमयी भाषा का होना भी अनिवार्य है, तभी भावों का प्रभावशाली सम्प्रेषण सम्भव है–

कितने भाव/कह न पाए हम/शब्द अभाव।

लहरों की मृदुलता में इतनी शक्ति है कि वह शिलाओं पर भी अपने मन की बात उकेर देगी–

लहरें आईं / शिला पर लिख गईं / आत्मकथाएँ।

समय के साथ सब कुछ बदल जाता है। जीवन की साँझ का अपना महत्त्व है। यह साँझ चाहे

दिवसान्त की हो या जीवन के ढल जाने की। परिन्दे या मनुष्य, सबकी गति एक जैसी होती है, विश्राम या अकेलापन एक को अच्छा लगता है, दूसरे को भीतर तक अकेला कर देता है; क्योंकि सब छोड़कर जा चुके होते हैं। अब जीवन का सारांश लिखने के लिए बुढ़ापे से काँपते हाथ बचे हैं–

धुँधली शाम / थके परिंदे लौटे / चाहें विश्राम।
साँझ की बेला / नीड़ निहारे पंछी / बैठ अकेला।
जीवन-संध्या / लिखते समाहार / काँपते हाथ।

जीवन की क्षणभंगुरता, हमें प्रतिपल स्मरण दिलाती है कि शाश्वत कुछ नहीं है, मनुष्य तो बिल्कुल भी नहीं। बस ओस की बूँद—सा क्षणिक जीवन है, जो न जाने कब विलीन हो जाए–

ओस की बूँद- / पल में खुशियों ने / आँखें लीं मूँद।

उम्र बढ़ जाने से व्यक्ति की प्रवृत्ति नहीं बदलती। ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्भाव उसके मन में बद्धमूल रहते हैं–

उजले केश / मन से अब तक / मिटा न द्वेष।

एक स्थिति होती है, मन का सामंजस्य न मिलना। उस स्थिति में व्यक्ति और भी अकेला हो जाता है। एक ही छत के नीचे अबोला, संवादहीनता आज की सबसे बड़ी विडम्बना है। जीवन से माधुर्य का लोप होना दु:खद है, इसका कारण है-वाणी की कटुता, जिससे वह शब्दों की फाँस बनकर करकती रहती है–

एक ही घर / छत और फर्श-सी / दूरी हममें।
धीमा ज़हर- / है संवादहीनता / घुटते रिश्ते।
शब्दों की फाँस / बरसों तक देती / मन को त्रास।

प्रकृति के मनमोहक सौन्दर्य पर कवयित्री ने अपनी लेखनी चलाकर उसे शृंगारित कर दिया है। 'हवा का मेघ-दुशाला' को उड़ाने के साथ उसका रूपक सौन्दर्य नूतनता लिये हुए है, तो सर्दी की धूप का एक कामचोर कर्मचारी की तरह उपस्थिति लगाकर गायब हो जाना, बहुत सहज चित्रण है। इस तरह के हाइकु तभी लिखे जा सकते हैं, जब रचनाकार इस संसार को खुली आँखों से देखे, सूक्ष्म सर्वेक्षण करे–

मेघ-दुशाला / उड़ा ले चली हवा / चमका चाँद।
सर्दी की धूप / उपस्थिति लगाके / चली झट से।

सर्द हवाओं का मंजीरा बजाना, मेघमालाओं का रीते घट लेकर दौड़ते हुए जाने का मानवीकरण सहज एवं चित्ताकर्षक है–

सर्द हवाएँ / मंजीरा बजाकर / दाँत बजाएँ।
मेघ मालाएँ / रीता घट लेकर / दौड़ती जाएँ।

सुनहरी धूप का लहरों पर बिखरना तो है ही, एक-दूसरे के रूप को आत्मसात् करके दोनों के निखरने की कल्पना अनोखा सौन्दर्यबोध लिये हुए है। झील के अंक में लगता है चाँद-तारे भरे हैं, लेकिन उसके हाथ फिर भी रीते हैं। कल्पना का यह सौन्दर्य हाइकु को और अधिक सम्प्रेष्य बना देता है–

स्वर्णिम धूप / लहरों पर बिखरी / दोनों निखरीं।
झील निहारे / अंक में चाँद-तारे / हाथ हैं रीते।

सुरंगमा ने वृक्ष को जुझारू व्यक्ति के प्रतीक-रूप में भी प्रस्तुत किया है–

वृक्ष हैं वही / जो तूफान से लड़े / आज हैं खड़े।

पर्यावरण का असन्तुलन विश्व स्तर पर चुनौती बन गया है। विकास के नाम पर हम मानव की सहचरी प्रकृति का विनाश करने पर तुले हैं। जंगल कटकर रेगिस्तान बनते जा रहे हैं। तालाब पाटकर कंक्रीट के भवन खड़े कर दिए गए। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश सभी प्रदूषित होते जा रहे हैं। पंछी व्याकुल कि नीड़ कहाँ बनाएँ? दरख़्त सूख गए, वन के द्वार पर भी कंक्रीट आ जंगल आ पहुँचा। हाँफते हुए पंछी तक को छाँव नहीं। खम्भे से छाँव का पता पूछना नितान्त नूतन उद्भावना है, जिसमें उच्च कोटि के साहित्य की सारी विशेषताएँ समाई हुई हैं। हाइकु के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले, पहले ऐसे रचनाकारों को पढ़ें और गुनें, तब लेखनी उठाएँ–

लेकर तृण / कंक्रीट के वन में / भटकें पंछी।
खंभे से पूछे-/हाँफता हुआ पंछी / छाँव का पता।
सूखा दरख़्त/कोई संगी न साथी/ पंछी न पाती।
पाँव पसारे / कंक्रीट आ पहुँचा / वन के द्वारे।

सदानीरा नदियों को भी रेत माफ़ियाओं ने अपने लोभ के कारण निष्प्राण कर दिया है। प्रतिबन्ध होने पर भी सत्ता की छाया में प्रकृति का दोहन करने वाले इन लुटेरों को रोकना आवश्यक है–

रेत माफिया / छलनी कर रहे / नदी का जिया।

कवयित्री ने सामाजिक सरोकारों की अनदेखी नहीं की है। उनके अनुसार धरा के प्राण बचाने का एक ही उपाय है कटान रोकना–

रोको कटान / वृक्षों में बसते हैं / धरा के प्राण।

युद्ध का अभिशाप उसे तिल-तिल मारता है, जो बच रहता है, जिसके स्वप्न सदा-सदा के लिए दम तोड़ देते हैं। दूसरा युद्ध वह नारी ही लड़ती है, जिसे पहाड़-सी ज़िन्दगी अकेले बितानी है–

नई दुल्हन / सीमा पर सो गए / स्वप्न नवल।

जहाँ जाने से हवा भी भयाक्रान्त होती है, वहाँ हमारे सैनिक मोर्चे पर डटे हैं, इसकी चिन्ता भी कवयित्री ने की है। दु:खद तब हो जाता है, जब वातानुकूलित भवन में बैठे देशद्रोही सेना के ही विरुद्ध विष-विमन करते हैं, उन पर पत्थर चलाने वालों के साथ खड़े हो जाते हैं।

हवा भी डरे / सियाचिन जाने से / जवान डटे।

आदमी भले ही चाँद पर पहुँच गया हो, लेकिन नारी का संघर्ष आज भी कम नहीं हुआ। वासना में लिप्त पुरुष-वर्ग, उसे आज भी शोषण का शिकार बनाता है। कवयित्री की यह चिन्ता हाइकु में अभिव्यक्त हुई है–

चाँद को छुआ / भू पर नारी संघर्ष / कम न हुआ।
नन्ही-सी कली / वासना की सेज पे / गई मसली।

परिवर्तन की आँधी ऐसी चली है कि गाँव से युवाओं का पलायन निरन्तर जारी है। कहकहे लगाती चौपाल अब गुमसुम है; क्योंकि जो वहाँ रह गए हैं, वे नितान्त अकेले हैं। चौपाल के मानवीकरण से यह हाइकु मार्मिक बन गया है–

गुम चौपाल / किसे सुनाएँ हाल / मन बेहाल।

जो बेहतर की तलाश में शहर की ओर दौड़े थे, वे सारे खण्डित स्वप्न आज हमें फुटपाथों पर नज़र आएँगे–

गाँव से आए /फुटपाथ पर पड़े / स्वप्न कितने।

भाव, भाषा और विषय-वैविध्य, इस तरह एकाकार हो गए हैं कि पाठक को इन हाइकु की ऊर्जा का प्रभाव रसमग्न एवं कल्पना-रंजित कर देता है। ■

नदियों के संकट पर गंभीर विश्लेषण

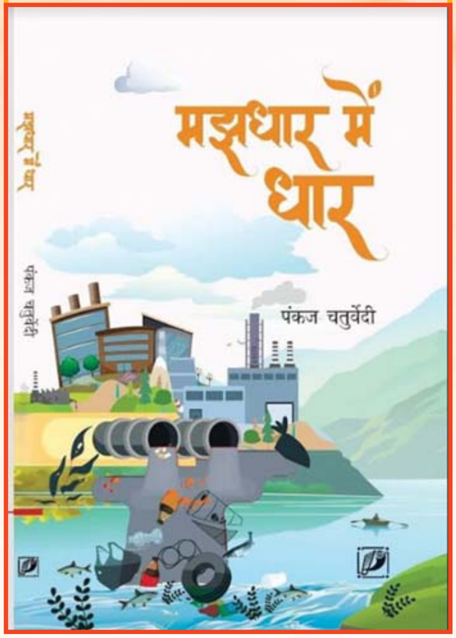

रोहित कौशिक

वरिष्ठ लेखक एवं पर्यावरणविद् पंकज चतुर्वेदी की हाल ही में प्रकाशित पुस्तक 'मझधार में धार'नदियों की पीड़ा को मार्मिकता और गंभीरता के साथ व्यक्त करती है। पंकज चतुर्वेदी इस पुस्तक के माध्यम से नदियों की सेहत से जुड़े अनेक सवाल प्रमुखता से उठाते हैं। सरकारी नीतियों पर तो सवाल है हीं, एक बड़ा सवाल यह भी है कि जल और नदियों की पूजा करने वाला समाज ही क्यों नदियों का दुश्मन बन गया? आज देश की अनेक नदियाँ प्रदूषण के कारण कराह रही हैं। समाज की उदासीनता के चलते अनेक नदियाँ दम तोड़ चुकी हैं। जिन नदियों को कभी बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, आज उन्हीं नदियों के प्रति उपेक्षा का भाव है। अनेक नदियाँ नालों में तब्दील हो चुकी हैं। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि नदियों किनारे रहने वाले लोगों ने ही नदियों का ध्यान नहीं रखा। यही वजह है कि नदियों का जल भी लोगों को बीमारियाँ और मौत बाँटने लगा। नदियों के बचाने के नाम पर काफी धन खर्च किया गया लेकिन नदियों की सेहत नहीं सुधरी। विकास के नाम पर बनने वाली सरकारी योजनाओं ने भी नदियों को मारने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

पंकज चतुर्वेदी इस पुस्तक में यह सवाल उठाते हैं कि इस मुद्दे पर बनने वाली सरकारी नीतियों में व्यावहारिकता क्यों नहीं है? दरअसल सरकारी नीतियों में तो कई स्तरों पर कमी है ही, एक दूसरा पहलू यह भी है कि इस मुद्दे पर काम करने वाले लोग और एनजीओ व्यक्तिगत स्वार्थ से नहीं बच पाते हैं। यह सही है कि आज किसी न किसी रूप से नदियों को बचाने के लिए देश के अलग-अलग हिस्सों में कई लोग काम कर रहे हैं। इनमें से कुछ लोग तो चुपचाप काम कर रहे हैं; लेकिन कुछ लोगों में प्रचार की ऐसी भूख है कि उन्होंने अपने काम का एक अलग ही प्रचार-तंत्र विकसित कर लिया है। नदियों को बचाने के नाम पर पुरस्कार प्राप्त करने की ऐसी होड़ हो रही है जो इस मुद्दे की सच्ची भावना के साथ एक तरह का खिलवाड़ ही है। ऐसे लोग अपने नाम से पहले स्वयं ही कई तरह के विशेषण भी लगाने लगे है। सवाल यह है कि नदियों को बचाने के इस तरह के प्रयास कितने कारगर होंगे। हो सकता है कि नदियों को बचाने के ऐसे प्रयासों से कुछ हद तक नदियों को पुनर्जीवन मिल जाए; लेकिन ऐसे प्रयास लंबे समय तक नदियों को स्थिति नहीं सुधार सकते। इसलिए आज जरूरत इस बात की है कि जो लोग व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से इस मुद्दे पर काम कर रहे हैं; उनमें प्रचार की भूख न हो, तभी वे इस मुद्दे पर वास्तविक काम कर पाएँगे। दूसरी तरफ इस मुद्दे पर बनने वाली सरकारी योजनाओं में व्यावहारिकता पर ध्यान दिया जाए।

पंकज चतुर्वेदी रेत खनन को नदियों की मौत का एक बड़ा कारण मानते हैं। रेत खनन के कारण आपसी लड़ाई-झगड़े भी खूब होते हैं। अत्यधिक रेत खनन से नदियों का पूरा तंत्र असंतुलित हो जाता है। इससे वहां की जैवविविधता भी खत्म होती है और नदियों का प्रवाह भी बाधित होता है। जब लेखक गंगा के प्रदूषण और गंगा की सफाई के नाम पर होने वाले दावों की पोल खोलता है, तो हमारी आँखें खुली रह जाती हैं। गंगा में टेनरियों और नालों का प्रदूषित जल रोकने के लिए स्थापित किए गए ट्रीटमेंट प्लांट का संचालन ठीक तरह से न होने के कारण स्थिति बदतर होती जा रही है। विडम्बना यह है कि जो लोग गंगा की पूजा कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं, वे ही लोग गंगा को प्रदूषण मुक्त करने के प्रति गंभीर नहीं है। प्रदूषण के मामले में यमुना का हाल भी गंगा से अलग नहीं है। दिल्ली में तो यमुना की हालत बहुत खराब है। लेखक ने हिंडन और काली नदी के प्रदूषण का भी सटीक विश्लेषण किया है। लखनऊ में गोमती नदी कई कारणों से अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही है। अंधाधुंध जल दोहन और सहयोगी नदियों का संरक्षण न होने के कारण आज इसकी स्थिति बदतर हो गई है। इसी तरह सोन नदी को अपनी सेहत बरकरार रखने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। रेत उत्खनन और कारखाने की गंदगी के कारण सोन नदी पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं। लेखक का मानना है कि अन्य नदियों की तुलना में अभी भी ब्रह्मपुत्र का जल इतना अधिक जहरीला नहीं हुआ है; लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि इस नदी का जल पूरी तरह से साफ है। ब्रह्मपुत्र नदी की एक समस्या इसके बहाव के कारण बढ़ रहा जमीन का कटाव और सालाना बाढ़ है, तो दूसरी समस्या इस नदी के किनारे शहरीकरण और कल-कारखानें हैं। इस पुस्तक में लेखक ने मेघालय और अरुणाचल प्रदेश की नदियों की वर्तमान स्थिति का गंभीर विश्लेषण किया है। इसके साथ ही क्षिप्रा, कावेरी, भावनी, अमरावती, तुंगभद्रा, गोदावरी, पेरियार, कृष्णा, हरमू, सुवर्णरेखा, जुमार, पोटपोटो, करम और साहिबी नदियों के संकट पर भी विस्तार से चर्चा की है। नदियों के संकट पर इस श्रमसाध्य अध्ययन के लिए पंकज चतुर्वेदी निश्चित रूप से बधाई के पात्र है।

मझधार में धार : पंकज चतुर्वेदी,
मूल्य : 230 रुपये, पृष्ठ:188,प्रकाशक :
प्रवासी प्रेम पब्लिशिंग, साहिबाबाद ■

लघुकथाः सहज सृजन की यात्रा

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

यात्रा, केवल सड़क नापना भर नहीं है; पहाड़, नदियाँ, वन-उपवन, पगडण्डी पार करना मात्र नहीं है। जिस मार्ग से हम जा रहे हैं, उस वन, पर्वत, नदी आदि के परिवेश का आनन्द प्राप्त करना भी है। सृजन भी ठीक वैसा ही है। केवल कथावस्तु का शाब्दिक ज्ञान या अनुभव पर्याप्त नहीं। शब्द के साक्षात् अर्थ से होती हुई हमारी यात्रा शब्द के एकाधिक अर्थों तक पहुँचने की होती है। लघुकथा में भी केवल शाब्दिक अर्थ की प्रतीति ही सब कुछ नहीं। शीर्षक के नाम पर कथा से उठाकर कुछ शब्द टाँक देना पर्याप्त नहीं है। उस शीर्षक का कथा की आत्मा से जुड़ाव होना भी आवश्यक है।

अच्छी रचना में हमारी यात्रा के कई पक्ष होते हैं। वाच्यार्थ से आगे की यात्रा, सृजन को प्रभावशाली बनाती है। शब्दार्थ और वाच्यार्थ यानी शब्दकोशीय अर्थ तो किसी प्रसंग विशेष में एक ही होता है, लेकिन उस शब्द के व्यंग्यार्थ एक से अधिक हो सकते हैं। व्यंग्यार्थ को समझने के लिए रचना का समग्र प्रभाव और उसकी प्रतीति आवश्यक है। यह तुरन्त ही हो जाए, नहीं कहा जा सकता। गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने के बाद उसे हृदयंगम करना अनिवार्य है। रसज्ञ के अनुसार एक ही रचना के कई पाठ हो सकते हैं। वे सभी पाठ ग्राह्यशक्ति और व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हो सकते हैं। कोई पात्र किस सन्दर्भ में, किस भाव-मुद्रा में, किस तरह और किस लहज़े में क्या कहता है, यह पूरे शाब्दिक परिदृश्य को बदल देता है। उस समय का कथन केवल शाब्दिक कथन न होकर, हाव (आंगिक क्रिया-कलाप) और भाव से अनुप्राणित होता है।

सपाटबयानी वाली लघुकथाएँ वाच्यार्थ से आगे नहीं बढ़ पाती हैं। यदि लघुकथा का किसी मंच पर वाचन किया जा रहा है, तो वह पढ़ना भर नहीं होता। कथ्य के अनुरूप हाव-भाव, विराम आदि का ध्यान रखकर वाचन करने से ही रचना सम्प्रेषित हो पाती है। अखबारी समाचार की तरह वाचन करना लघुकथा को सम्प्रेषित नहीं कर पाता। कुछ वाचन करने वाले मंच पर हड़बड़ाते हुए पहुँचते हैं, हाथ में पकड़ा कागज फड़फड़ाते हुए पढ़ते हैं और धड़धड़ाते हुए मंच से उतर आते हैं। लघुकथा भी बिना सम्प्रेषित हुए उनके साथ ही मंच से उतर आती है। आधे मन से सुनने वाले वैसी ही उस पर टिप्पणियाँ दे दें, तो लेखक सिर पीट लेगा। कुछ टिप्पणी करने वाले तो इतने महान होते हैं कि भाषा-भाव समझे बिना, गम्भीर टिप्पणियाँ जड़ देते हैं, जिनका कोई ओर-छोर नहीं होता है। फ़ेसबुक पर कुछ अच्छे रचनाकारों की रचनाओं के अतिरिक्त ऐसे अधीर लेखक भी होते हैं, जिनको, बढ़िया, क्या खूब, बेजोड़ जैसे शब्दों की टिप्पणियाँ मिल जाएँ, तो खुश। उन टिप्पणियों की बाढ़ में यदि किसी ने सही विश्लेषण कर दिया, तो वह बरैया के छत्ते में ढेला मारने जैसा ही हो जाएगा। सब उस पर टूट पड़ेंगे। यह वह क्षण है, जहाँ से यशकामी, आत्ममुग्ध लेखक के हाथ से अच्छी रचनात्मकता की लगाम छूटने लगती है। मैं यहाँ यह ज़ोर देना चाहूँगा कि रचना महत्त्वपूर्ण होती है। उसी से रचनाकार की पहचान होती है।

पुस्तकों की भूमिका लिखने वाली कुछ ऐसी विभूतियाँ होती हैं कि वे लघुकथा और कहानी में अन्तर नहीं करतीं। लघुकथा की भूमिका में भी बार-बार उसे कहानी समझकर लिख देते हैं। इस तरह का भूमिका लेखन, नए और पुराने सभी लेखकों को प्रभावित करता है। सहयोगी स्तर पर लागत मूल्य लेकर गुणात्मक सम्पादन-कार्य करना बुरा नहीं; लेकिन दुगुने पैसे लेकर साझा-संग्रह तैयार करना, वह कार्य भी समय पर नहीं हो पाना, प्रश्न खड़े करता है। नए लेखकों को आगे बढ़ाना, महत्त्वपूर्ण कार्य है, जो सभी लेखकों को करना चाहिए। कुछ ऐसी विभूतियाँ लघुकथा-जगत् में हैं, जो सम्पादक को एक बार भी रचना नहीं भेजेंगी, लेकिन शिकायत करने में आगे रहेंगे कि उन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। कुछ दूसरे साथियों की केवल इसलिए निन्दा करेंगे कि उनकी बेसिर-पैर की रचनाओं को क्यों प्रकाशित नहीं किया गया। उनके गली-मुहल्ले वाली गोष्ठियों के समाचार क्यों नहीं छापे गए।

लेखकीय ईमानदारी से ही लघुकथा को आगे बढ़ाया जा सकता है। कूड़े के पहाड़ों को सूँघने के लिए मारे-मारे फिरने से अच्छा है, कुछ अच्छा लिखें। इस विशेषांक के माध्यम से रचनाकारों को जोड़ने का यह लघु प्रयास है, जो भविष्य में भी क्रियान्वित होता रहेगा। अपने रचना कर्म से इस अंक को सुसज्जित करने वाले हस्ताक्षरों का मैं हृदय से आभारी रहूँगा। ■

डॉ.कविता भट्ट की प्रमुख पुस्तकें

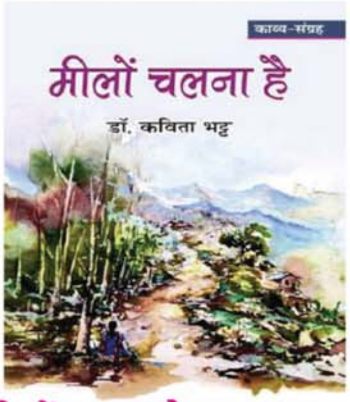

मीलों चलना है (काव्य-संग्रह)
राघव पब्लिकेशन, नई दिल्ली,
संस्करणः 2021, पृष्ठः 144,
मूल्यः 200 रुपये

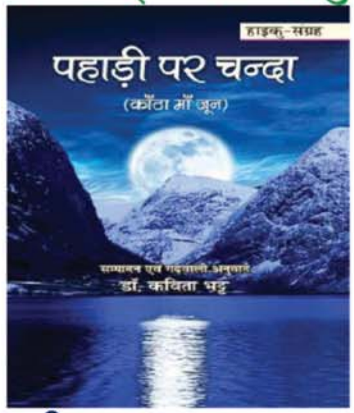

पहाड़ी पर चन्दा (हाइकु-संग्रह)
अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली नई
दिल्ली-110030, संस्करणः 2021,
पृष्ठ : 168 मूल्य : 340 रुपये

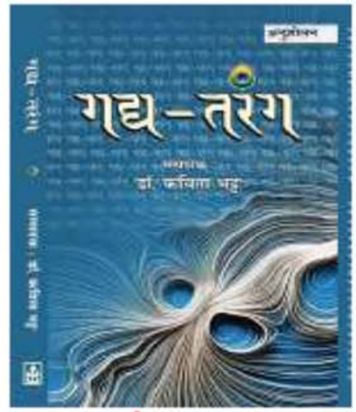

गद्य-तरंग (अनुशीलन)
अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली नई
दिल्ली-110030, संस्करणः 2021,
पृष्ठः184 मूल्यः 380 रुपये

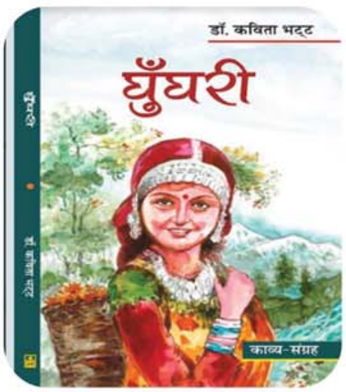

घुँघरी (काव्य-संग्रह)
पृष्ठ ;128, मूल्यः 260 रुपये, संस्करणः 2018,
अयन प्रकाशन ,1/20, महरौली
नई दिल्ली-110030

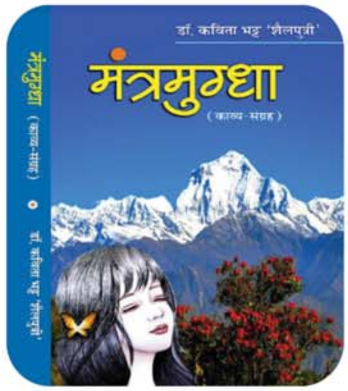

मन्त्रमुग्धा (काव्य-संग्रह)
डॉ कविता भट्ट 'शैलपुत्री';
पृष्ठः 104; मूल्यः 240 रुपये; संस्करणः2022; ISBN -978-93-94320-01-7 प्रकाशक; शैलपुत्री (इम्प्रिण्ट),
जीएसएफ़ नेटवर्क प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली

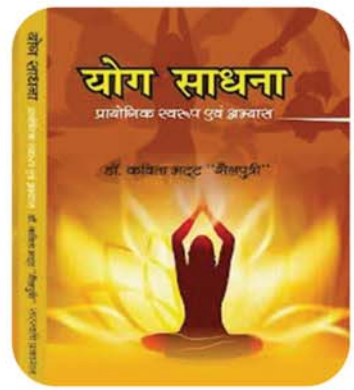

योग-साधना
सरस्वती प्रकाशन4760-61/63,अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,पृष्ठ : 264,
मूल्य : 225 रुपये, वर्ष : 2019

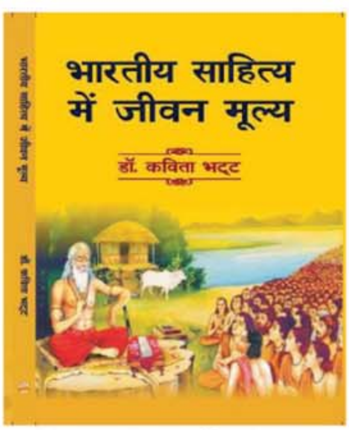

भारतीय साहित्य में जीवन मूल्य
डॉ. कविता भट्ट,
पृष्ठः128, मूल्यः350 रुपये;
संस्करणः2019, राघव पब्लिकेशंस,
नई दिल्ली-110083

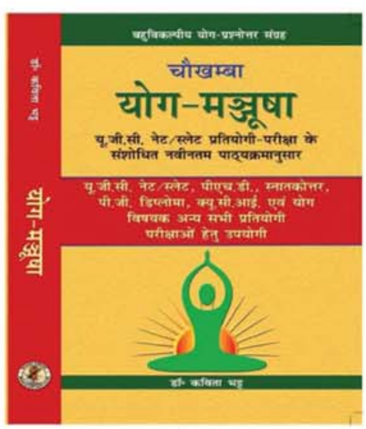

चौखम्बा योग मञ्जूषा
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,
वाराणसी-221001, संस्करणः
2019, पृष्ठः458 मूल्यः 400 रुपये
ISBN 978-93-85679-68-1

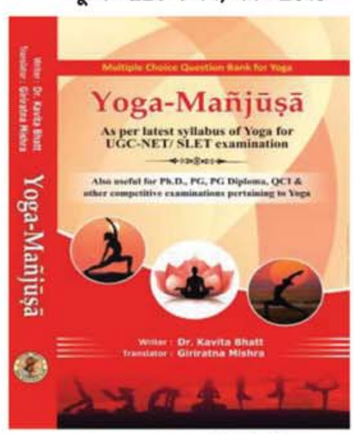

Yoga-Mañūjṣhā
(English)
Chaukhambha Surbharti
prakashan, Varanasi-221001
Pages 458, Price ₹495, Year 2020
ISBN 978-93-86554-89-5

REPPA®
FLAGS & SOUVENIRS

Fine source of more than 600 titles of local, national and international

· PINS · FLAGS
· CRESTS · CAPS
· SOUVENIRS

www.reppa.ca

प्यार : एक छाता

विपदाएँ आते ही,
खुलकर तन जाता है
हटते ही
चुपचाप सिमट ढीला होता है;
वर्षा से बचकर
कोने में कहीं टिका दो,
प्यार एक छाता है
आश्रय देता है, गीला होता है।

–सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

83 Queen Elizabeth Blvd · Toronto · ON · Canada · 416-599-FLAG (3524) · info@reppa.ca